हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४५ वाँ ग्रन्थ ।

सरल मनोविज्ञान ।

लेखक—

श्रीयुत बाबू कुन्दनलाल गुप्त ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

फाल्गुन, १९७७ वि० ।

मार्च १९२१ ई० ।

प्रथमावृत्ति ।] [मू० १॥)

जिल्दसहितका मूल्य दो रुपया ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई ।

मुद्रक—
विनायक बाळकृष्ण परांजपे,
नेटिव ओपीनियन प्रेस,
आंग्रेवाडी, गिरगांव-बम्बई ।

समर्पण ।

मैं यह छोटीसी पुस्तिका अपने शिक्षास्थान, उस
दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज, लाहोर-
की सेवामें सादर समर्पण करता
हूँ जिसके महान् शिक्षा-
उद्योगसे पंजाबका
प्रत्येक बच्चा
परिचित है ।
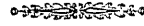
लेखक—
कुन्दनलाल गुप्त ।

भूमिका।

हिन्दी संसारमें पश्चिमी ढंगके विज्ञानोंका नितान्त अभाव देखकर मनो विज्ञानपर यह छोटीसी पुस्तिका सरल भाषामें लिखनेका साहस किया गया है। चिर-कालसे हमारी यह भावना है कि हिन्दीकी सेवा की जाय और अच्छी तरह की जाय; परन्तु कुछ कारणोंसे हमारी यह चिररक्षित इच्छा कार्यमें परिणत नहीं हो सकी थी। आज परम पिता परमात्माकी अपार कृपासे अवसर मिला है कि हम हिन्दी संसारके सम्मुख अपनी यह प्रथम सेवा उपस्थित करते हैं और भविष्यमें भी इस सेवाकार्यको करते रहनेका विचार रखते हैं।

योरप और अमरीकामें मनोविज्ञान, आचार, तर्क, सम्पत्ति, रसायन, भौतिक, आदि विषयोंपर वैज्ञानिक दृष्टिसे स्वतन्त्र विचार किया जाता है और वहाँके विद्वानोंने अतिशय परिश्रमसे बड़े बड़े उच्च कोटिके ग्रंथ लिखे हैं जिनसे सारा योरप और अमरीका लाभ उठा रहा है। परन्तु दुर्भाग्यसे हमारे देशमें ऐसा नहीं होता। हम इन लाभकारी विज्ञानोंके ज्ञानसे बिल्कुल वंचित हैं। हमारी प्राचीन शिक्षाप्रणाली प्राचीन हो चुकी है और आधुनिक शिक्षापद्धति अत्यन्त अस्वाभाविक, कृत्रिम और दुर्बोध है। तमाम शिक्षा विदेशी भाषा द्वारा होनेके कारण, हमें किसी भी विषयका पर्याप्त ज्ञान नहीं होने पाता। केवल परीक्षायें पास करनेके लिये विद्यार्थी बड़े बड़े पोथे रट लेते हैं और महापरिश्रम और व्यय करनेके पश्चात् यदि उनको परम पुरुषार्थ, E. A. C. पद प्राप्त हो गया तो अपनेको कृतकृत्य समझ लेते है, अन्यथा वकील बन जाते हैं और देशमें द्वेषकी अग्निको भड़काते रहते हैं। ऐसे अशिक्षित–शिक्षित भी अत्यन्त कम हैं और एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सारा देश अविद्याके अंधकारमें गोते खा रहा है।

यह जानकर बहुत कुछ आश्वासन मिलता है कि मातृभाषाका उद्धार करनेके अर्थ भारतनिवासी अब प्रयत्न करने लगे हैं और साहित्य, विज्ञान, कला-कौशल आदि पर पुस्तकें लिखकर मातृभाषाका रिक्त कोष भरने लगे हैं। यह स्वयं सिद्ध है कि जबतक एक देशके बच्चोंकी शिक्षा उनकी अपनी भाषामें नहीं होती तबतक जिसको वास्तविक शिक्षा कहते है वह कभी नहीं हो सकती।

उपर्युक्त विचारोंसे प्रेरित होकर हमने मनोविज्ञान विषयपर यह एक छोटासा ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथके लिखनेमें Colin S. Buell's Essen-

tials of Psychology प्रो० कालिन एस. बुअलके 'मनोविज्ञानके तत्त्व' का बहुत उपयोग किया है। एक प्रकारसे यह सरल मनोविज्ञान इसी पुस्तकका स्वतन्त्र अनुवाद है । अतः हम प्रो० बुअलके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। हमने आवश्यक-तानुसार प्रो० Ladd और प्रो० Stout के विचारोंसे भी लाभ उठाया है। इस लिये हम इन दोनों महानुभावोंके भी अनुग्रहीत हैं।

हिन्दी संसार इस विषयसे सर्वथा अपरिचित है, इसी कारण बड़ी पुस्तक न लिखकर प्रथम यह छोटी सी पुस्तिका लिखी गई है। इस पुस्तिकामें मनोविज्ञानके सुगम और सामान्य सिद्धान्तोंकी ही व्याख्या यथाशक्ति सरल, स्पष्ट और सुबोध भाषामें की गई है। विषयको भारतीय विद्यार्थियोंके समझने योग्य बनानेके लिये यथास्थान कथा कहावतों और स्वानुभवोंका उल्लेख कर दिया गया है और इस बातपर विशेष ध्यान रक्खा गया है कि विद्यार्थी दूसरोंकी बताई हुई बातोंपर ही निर्भर न रहें किन्तु अपने लिये स्वयं विचारने, परीक्षा और अनुभव करनेका अभ्यास करें। इसके लिये समयानुसार परीक्षाके सरल ढंग बता दिये गये हैं और विषयके अन्तर्गत और प्रत्येक अध्यायके अन्तपर प्रश्नोंकी एक बड़ी संख्या जोड़ दी गई है। प्रश्नोंका चुनाव इस शैलीसे किया गया है जिससे विद्यार्थीकी बुद्धिका विकाश भी हो और सामयिक सामाजिक प्रश्नोंपर वैज्ञानिक ढंगसे विचार करना भी आजावे। इन प्रश्नोंपर विचार करते समय स्वतन्त्रता और उदारतासे कार्य लेना आवश्यक है।

विज्ञानविषयक हिन्दी लेखकोंके सम्मुख जो कठिनता प्रायः उपस्थित रहा करती है वह हमारे सम्मुख भी बराबर बनी रही है। यह परिभाषासंबन्धी कठिनता है। चिरकालसे वैज्ञानिक विचार होनेके कारण अँगरेजी भाषामें अनेक पारिभाषिक शब्द बन गये हैं जिनका याथातथ्य अनुवाद करनेके लिये हिन्दीमें उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। इस सरल मनोविज्ञानके लिखते समय हमको स्वयं अधिकांश शब्दों-की रचना करनी पड़ी है। हम नहीं जानते कि हमें इस रचनामें कहाँतक सफल हुई है और हिन्दी संसार इसका कैसा आदर करेगा। यदि इस पुस्तिकासे हिन्दी प्रेमियोंकी रुचि इस विषयकी ओर कुछ भी आकर्षित हो जायगी तो हम अपने इस परिश्रमको सफल समझेंगे और आचार, तर्क और सम्पत्ति पर भी सरल पुस्तकें लिखनेका प्रयत्न करेंगे।

रोहतक।
६-१-१९२०. } —कुन्दनलाल गुप्त।

अध्याय-सूची ।

इस विषय सबन्धी अन्य पुस्तकें ।

---

(1) मनोविज्ञान (पं० गणपत जानकीराम दुबे बी. ए.)

(2) Essentials of Psychology (Pro. Colin S. Buell M. A.)

(3) Primer of Psychology (George Trumbull Ladd)

(4) Mannual of Psychology (G. F. Stout M. A. LL. D.)

सरल मनोविज्ञान।

पहला अध्याय।

आरम्भिक।

अनेक प्रकारकी घटना प्रतिक्षण हमारे जीवनमें होती रहती हैं। कभी हम देखते हैं, कभी सुनते हैं, कभी किसीको स्मरण करते हैं, कभी कुछ कल्पना करते हैं, कभी कुछ विचार करते हैं। किसी वस्तुसे सुख और किसी वस्तुसे दुःख अनुभव होता है। सुखकी प्राप्ति और दुःखके परिहारका प्रयत्न होता है। जिस शक्ति द्वारा ये सर्व घटनायें उत्पन्न होती हैं उसको चित्त या चेतना (Consciousness) कहते हैं। और इन संवेदन, उपलब्धि, स्मृति, कल्पना, विचार, सुख-दुःख, प्रेम-भय और संकल्पको चित्तकी वृत्ति (States of consciousness) कहते हैं। चित्तकी वृत्तियोंका नियमबद्ध वर्णन और व्याख्या मनोविज्ञान है।

किसी विशेष ज्ञानकी बाबत घटनाओंको एकत्रित करना और उन घटनाओंकी नियमबद्ध व्याख्या और वर्णन करना ही विज्ञान है। विज्ञानका कार्य केवल यही नहीं है कि अमुक घटना क्या है, किन्तु यह व्याख्यान करना भी है कि वह घटना कैसे और क्यों होती है। विज्ञान दो प्रकारका होता है—एक आदर्श और दूसरा प्राकृतिक। आदर्श विज्ञानमें आदर्शका वर्णन और व्याख्या होती है यथा तर्कशास्त्र (Logic), आचार (Ethics) और सौन्दर्य्यशास्त्र (Æsthetics)। तर्कशास्त्र बताता है कि तर्क किस प्रकार करना चाहिये, अर्थात् तर्कका आदर्श क्या है। आचारशास्त्र बताता है कि मनुष्यका परम पुरुषार्थ या उद्देश क्या है, अच्छे और बुरेका परिमाण (Standard of right and wrong) क्या है, क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। सौन्दर्य्यशास्त्र सौन्दर्य्यका आदर्श बताता है कि चित्र, मूर्ति और कविता कैसी होनी चाहिये। परन्तु प्राकृतिक विज्ञानका 'चाहिये' से कुछ सम्बन्ध नहीं। इसका कार्य्य 'है' का वर्णन करना है। अमुक बात या वस्तु क्या है, कैसे और क्यों ऐसी है जैसी कि है। रसायनशास्त्र (Chemistry) भौतिकशास्त्र (Physics) और मनोविज्ञान (Psychology) प्राकृतिक विज्ञानके उदाहरण हैं। रसायनशास्त्रका कार्य्य यह बतलाना नहीं है कि जलकी बनावट कैसी होनी चाहिये किन्तु यह है कि वह कैसे बनता है वह हाईड्रोजन और ऑक्सिजन दो गैसोंसे मिलकर बना है और इस प्रकार इतने भाग मिलकर बना है। भौतिक शास्त्र यह नहीं बताता कि उष्णता, प्रकाश और शब्द कैसे होने चाहिये किन्तु ये क्या हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञानका कार्य्य यह बताना नहीं कि संवेदन, विचार, कल्पना आदि कैसे होने चाहिये किन्तु ये क्या हैं, कैसे उत्पन्न होते हैं, क्यों उत्पन्न होते हैं और किन नियमोंके अनुसार कार्य करते हैं।

मनोविज्ञान एक विज्ञान है, कला नहीं । नियमबद्ध व्याख्या और वर्णनको विज्ञान और नियमबद्ध कार्य्यको कला कहते हैं। मनोविज्ञानका कार्य्य इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संकल्प और ज्ञानकी व्याख्या और वर्णन करना है कि ये क्या हैं, कैसे और क्यों उत्पन्न होते हैं । इसका कार्य्य यह नहीं है कि इन मानसिक वृत्तियोंसे किस प्रकार कार्य्य होना चाहिये, अर्थात् इनका प्रयोग किस प्रकार किया जाय । मेस्मेरिजम और हिप्नाटिजम कला हैं । रसायनका कार्य्य वस्तुओंके बनानेवाले तत्त्वोंका वर्णन करना है, किन्तु जहाज बनाना, वायुयान और अन्य यन्त्र बनाना, औषध तैयार करना कला है, जो इस विज्ञानका विषय नहीं । एक वस्तुका निर्माण करना कला है और उस विषयसम्बन्धी सामान्य नियम (General rules) जानना विज्ञान है । रेखागणित भूमि और आकाशके नियम बताता है । किन्तु मकान बनाना, नहर खोदना नहीं । परन्तु यदि एक शिल्पकार विज्ञानसे प्रतिपादित नियमोंका उल्लंघन करेगा तो स्वकार्य्यमें हानि उठायगा और जो कार्य्य नियमोंके अन्तर्गत होता है वह चाहे किसी ढंगका हो ज्ञानकारी, सुकर और स्थायी होगा । विज्ञान स्वाध्यायसे और कला अभ्याससे आती है ।

विज्ञानके लिये सामानकी आवश्यकता है । बिना सामान कोई वस्तु तैयार नहीं हो सकती । जैसे बिना ईंट, चूने आदिके महल नहीं बन सकता वैसे ही विषयसम्बन्धी घटनाओंके अभावमें विज्ञान निर्मित नहीं हो सकता । यथा, कल्पना (Imagination) को जाननेके लिये कि कल्पना क्या है, कैसे और क्यों उत्पन्न होती है यह आवश्यक है कि बहुतसी कल्पनाओंका स्वाध्याय किया जाय। सामान्य नियम ढूँढ़नेके वास्ते एक दो कल्पनाओंसे कार्य्य नहीं चल सकता । इन विशेष कल्पनाओंका केवल वर्णन मात्र कर सकते हैं कि ये किस प्रकार उठीं, क्यों उठीं और क्या थीं । परन्तु यह नहीं कह सकते कि कल्पना इस प्रकार, यों

उठा करती हैं और ऐसी होती हैं। बहुतसी कल्पनाओंकी परीक्षा किये बिना सामान्य नियम विदित नहीं हो सकता। मनोविज्ञानके पास सामान प्राप्तिके तीन साधन हैं——मनन (Introspection), निरीक्षण (Observation) और परीक्षा (Experiments)।

मन एक अद्भुत गुप्त वस्तु है। एक व्यक्तिके मनकी वृत्ति दूसरा नहीं जान सकता। मनकी वृत्ति जाननेके लिये स्वमनका स्वाध्याय स्वयम् करना पड़ता है। इस स्वयम् स्वाध्यायको मनन कहते हैं। प्राचीन कालमें इस मनन साधनका उपयोग बहुत अधिक किया जाता था। मनोविज्ञानवेत्ता एकान्त स्थानमें ध्यानावस्थित हो जाते थे और स्वचित्तमें उत्पन्न होनेवाली अनेक वृत्तियोंका मनन किया करते थे और दूसरेके मनोंसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखते थे। उनको यह परवा नही थी कि दूसरा मन उनके साथ सहमत है या नही। मनोविज्ञानके लिये यद्यपि मनन-परिणाम बहुत आवश्यक होते हैं किन्तु इस साधनके प्रयोगमें एक बड़ी त्रुटि है। वह त्रुटि यह है कि मन एक समयमें एक ही कार्य कर सकता है—एकसे अधिक नहीं। जिस समय मनमें एक वृत्ति उत्पन्न हो रही हो उस समय वही मन उस वृत्तिका स्वाध्याय नहीं कर सकता। यदि स्वाध्यायमें प्रवृत्त होगा तो वृत्ति जाती रहेगी। यथा एक मनुष्य—एक उपन्यासकी कल्पना कर रहा है—वह सोच रहा है कि उसमें कितने पात्र हों, किस प्रकार चरित्रगठन हो, कौन रस और भाव हों, इत्यादि। यदि वह व्यक्ति साथ ही साथ अपनी इस कल्पनाका स्वाध्याय करना चाहे कि यह क्या है, उपन्यासकी कल्पना कैसे और क्यों उठी, नाटककी कल्पना क्यों नहीं उठी, तो दोनों बातें—कल्पना और उसका मनन—एक संग, नितान्त असंभव हैं। जैसे ही मन स्वाध्यायकी तरफ हो गया उपन्यासकी कल्पना जाती रहेगी। प्रवृत्ति एक समयमें एक ही तरफ जा सकती है। दूसरी वृत्तिके आते ही पहली वृत्ति नहीं रहती। परन्तु मननके स्थानमें

'पश्चात् मनन'(Retrospection) हो सकता है, अर्थात् जिस समय एक वृत्तिका अन्त हो जाय उस समय उसका स्वाध्याय किया जाय कि वह क्या थी, कैसे और क्यों उठी थी । इस 'पश्चात् मनन'के साधनका यथायोग्य उपयोग करनेके वास्ते बड़ी बलवान् स्मृति (Memory) की आवश्यकता है जो बहुधा नहीं पाई जाती ।

दूसरा साधन निरीक्षणका है । दूसरोंके शारीरिक कार्य्योंको ध्यानपूर्वक स्वाध्याय करना ही निरीक्षण है । चित्तकी वृत्तियोंका प्रभाव शरीर पर सर्वदा पड़ता है । भिन्न भिन्न प्रभावोंके अनुसार शरीर भिन्न भिन्न कार्य्य करता है और शरीरमें भिन्न भिन्न परिवर्तन उत्पन्न होते हैं । हम उन कार्य्यों और परिवर्तनोंका निरीक्षण करके उनकी वृत्तियोंका अनुमान लगा लेते हैं । यथा, किसी मनुष्यको उदासमुख, सजल-नयन देखकर उसके शोकातुर होनेका अनुमान किया जाता है । लाल मुख, लाल चक्षु, काँपते हुए शरीरको देखकर आनन्दका खयाल आता है । परन्तु ऐसा अनुमान सर्वदा सत्य नहीं हो सकता । हम स्वदशानुसार दूसरोंके कार्य्योंसे उनके अन्तरस्थित कारणोंका अनुमान करते हैं । हम समझते हैं कि जिस प्रकारके हमारे मन और शरीर बने हैं, जैसा स्वभाव हमारे मन और शरीरका है वैसी ही बनावट और स्वभाव अन्य मनों और शरीरोंके हैं, किन्तु यह कोई निश्चित नहीं । निरीक्षणमें यह एक बड़ी त्रुटि है । तीतर पक्षीकी बोलीका अभिप्राय एक मौलाना साहब 'शुभान तेरी कुदरत' और एक मारवाड़ी 'नून तेल अदरक' निकालता है । प्रेमपात्रके सर्व हावभावोंको एक प्रेमी अपने लिये समझता है और शत्रुके सहज कार्य्योंको भी एक द्वेषी अपने विरुद्ध खयाल करता है । न्याय-दरबारमें गवाह शपथपूर्वक एक दूसरेसे नितान्त विरुद्ध वर्णन देते हैं, किन्तु सबको असत्यभाषी नहीं कहा जा सकता । अतः निरिक्षणके साधनको अधिकतम उपयोगी बनानेके लिये बहु-संख्यक

निरीक्षणोंकी आवश्यकता है और निरीक्षण अत्यन्त ध्यानपूर्वक और सावधानीसे होना चाहिये ।

तीसरा साधन परीक्षा है। योरप और अमरिकामें मनोविज्ञानके स्वाध्यायके लिये प्रयोगशालायें (Laboratories) स्थापित हो गई हैं और हो रही हैं। प्रत्येक मनुष्य जो प्रयोगशालामें आता है परीक्षाका विषय बनाया जा सकता है और उससे अनेक बातोंका ज्ञान ठीक ठीक प्राप्त किया जा सकता है। यथा पुरकार (A pair of compasses) का दुहरा संवेदन शरीरके कौन कौन भाग पर कितनी कितनी दूरी पर होता है। किस प्रकारके कितने शब्दोंका स्मरण किस अवस्थामें कितने समय तक होता है। इत्यादि अनेक प्रयोग किये जाते हैं और परिणाम निकाले जाते हैं। प्रत्येक साधारण व्यक्ति उनको प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी कठिनता यह है कि अधिकांश मानसिक क्रियायें ऐसी हैं जिनकी यन्त्रद्वारा परीक्षा नहीं हो सकती। विचार-प्रवाहको यन्त्र कैसे माप सकता है ? प्रेम, भय, क्रोध, आदि यन्त्रपरीक्षाके विषय नहीं बनाये जा सकते। इनकी गहराईका पता मनन और निरीक्षण द्वारा ही लगाया जा सकता है ।

अतः सारांश यह निकलता है कि मनन, निरीक्षण और परीक्षा तीनों साधन उपयोगी और आवश्यक हैं। मनोविज्ञानके लिये पूर्ण रूपसे सामग्री एकत्रित करनेके अर्थ किसी एक साधन पर निर्भरकरना भूल है। समयानुकूल तीनों साधनोंसे विचारपूर्वक कार्य्य लेना लाभप्रद है ।

वैज्ञानिक प्रयोजनके लिये चित्त-वृत्तियोंको तीन विभागोंमें विभक्त करते हैं। इनको मनके तीन मुख्य व्यापार (functions) कहते हैं । इनके नाम हैं— १ ज्ञान (Cognition), २ विकार (Feeling) और ३ संकल्प (Willing)। वास्तविक मानसिक जीवनमें ज्ञान, विकार और संकल्प एक दूसरेसे अलग नहीं। प्रत्येक मानसिक क्रियामें तीनों विद्यमान होते हैं। कभी कोई अ–

धिक और कभी कोई न्यून । यथा, अध्यापककी शिक्षाका ज्ञान नहीं हो सकता यदि पाठ सुननेका प्रयत्न न किया जाय, अर्थात् सुननेमें अवधान न लगाया जाय और उसकी तरफ रुचि न हो । यदि साव-धानता और रुचिके अंश न होंगे तो ज्ञान भी नहीं होगा। जिस विषयमें रुचि नहीं होती उसमें ध्यान नहीं लग सकता और इस लिये विषयका ज्ञान भी नहीं प्राप्त हो सकता। और जबतक किसी बातका ज्ञान नहीं होता तबतक रुचि नहीं होती । प्रयत्नके बिना ज्ञान नहीं और ज्ञानके बिना प्रयत्न नहीं । जबतक हमको एक विषयका अनुभव नहीं कि यह वस्तु सुखदायक है या दुःखदायक, तब तक उसकी प्राप्ति और परिहारकी इच्छा नहीं होती और इच्छा न होनेसे प्रयत्न नहीं होता । कहाँ तक कहा जाय ये तीनों मनकी प्रत्येक क्रियामें विद्यमान रहते हैं, परन्तु वैज्ञानिक व्याख्याके लिये तीनों व्यापारोंका वर्णन अलग अलग किया जायगा । विद्यार्थीको चाहिये कि वे यह भली प्रकारसे समझ लें कि ज्ञान, विकार और संकल्प अलग अलग नहीं, किन्तु एक ही मनके धर्म हैं । मानसिक जीवन सीधा साधा नहीं किन्तु अत्यन्त जटिल है । इसको समझनेके वास्ते बड़ी सावधानी और परिश्रमकी आवश्यकता है ।

यहाँ यह भी ध्यानमें रखना आवश्यक है कि मनोविज्ञानका कार्य्य मनकी वृत्तियोंका वर्णन और व्याख्या करना है । इसका कार्य्य यह नहीं है कि मन क्या वस्तु है और कहाँ रहती है । यह विषय दर्शन (Philosophy) का है, इससे मनोविज्ञानका कोई सम्बन्ध नहीं । मनोविज्ञान तो यह मानकर चलता है कि मन है और इच्छा द्वेषादि उसकी वृत्तियाँ हैं और उसका स्थान मस्तिष्कमें है ।

मन और शरीरका परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह विषय भी दर्शनशास्त्रका है । मनोविज्ञान इस झंझटमें नहीं पड़ता कि मन शरीरपर कार्य्य करता है, या शरीर मनपर कार्य्य करता है, या दोनों एक दूसरे पर क्रिया

करते हैं, या दोनों समान्तर रेखाओंके समान अलग किन्तु समान क्रिया एक संग करते हैं। मनोविज्ञान यह मान कर चलता है कि मन और शरीरका परस्पर गाढ़ सम्बन्ध है, मनका प्रभाव शरीरपर और शरीरका प्रभाव मनपर पड़ता है। प्रत्यक्षमें देखा जाता है जब कभी मनमें भय, लज्जा, शोक, मोह आदि उठते हैं तो इन वृत्तियोंका प्रभाव शरीरपर तत्काल पड़ता है और तद्नुरूप परिवर्तन शरीरमें हो जाते हैं। यदि शरीर अस्वस्थ, रोगी और थका हुआ होता है तो शारीरिक दशाका प्रभाव मनपर पड़ता है और मन कार्याशक्त निर्बल हो जाता है। अँगरेजीमें एक कहावत है—Sound mind in a sound body—स्वस्थ मन स्वस्थ शरीरमें रहता है।

मनका बाह्य संसारसे क्या सम्बन्ध है और किस प्रकार बाह्य संसारसे संवेदन प्राप्त करता है इस विषयको जाननेके लिये शरीरविज्ञान (Physiology) का पठन आवश्यक है । इस छोटीसी पुस्तिकामें सर्व विषयोंका उल्लेख यथायोग्य नहीं किया जा सकता; परन्तु वर्तमान प्रयोजनके वास्ते कुछ संक्षेपरूपसे यहाँ दे दिया जाता है जिससे हमारे वर्तमान स्वाध्यायमें सरलता रहे।

साधारणतया मनका स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क दो होते हैं–एक बड़ा और दूसरा छोटा। बड़ा मस्तिष्क सिरकी खोपरीका सारा ऊपरवाला भाग घेरे हुए है और इसका शासन पाँचों इंद्रियों और समस्त इच्छित गतियोंपर होता है। इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, ज्ञान, संकल्प इसीमें उत्पन्न होते हैं। इसीमें प्रत्यक्ष और पुनःप्रत्यक्ष होते हैं। छोटा मस्तिष्क मांसपेशियोंकी गतिको शासित करता है। यदि इसको हानि पहुँच जाय तो हम स्वशरीरको नियममें नहीं रख सकते। शराब, भंग, आदि मादक द्रव्योंका असर इसी छोटे मस्तिष्क पर पड़ता है जिससे नशेबाज अपनी गतिको ठीक नहीं रख सकता। कोई टाँग कहीं

पड़ती है और कोई टाँग कहीं। टाँग रखता कहीं है और पड़ती कहीं हैं। कहता कुछ है और निकलता कुछ है। मस्तिष्कके एक भागका नाम मोडुलाओ-वलेंगेटा है। इसका व्यापार परमावश्यक है। इसको हानि पहुँचनेसे हृदय और फेफड़े स्वकार्य्य छोड़ देते हैं और मृत्यु तत्काल आ उपस्थित होती है। मास्तिष्कमेंसे ज्ञानतन्तु जिनको मज्जातन्तु भी कहते हैं निकल कर कुछ सीधे और कुछ रीढ़की हड्डी द्वारा समग्र शरीरमें फैल जाते हैं। ये तन्तु दो दो अर्थात् जोड़ेसे रहते हैं। एक तन्तु बाह्य वस्तुओंके प्रभावको मस्तिष्क तक पहुँचाता है जहाँ उस प्रभावका संवेदन उत्पन्न होता है। दूसरा तन्तु मस्तिष्कसे जो आज्ञा होती है उसको निर्दिष्ट स्थान तक ले आता है। यथा, मेरी अंगुली पर किसीने सुई चुभाई। एक तन्तु इस चुभनेके प्रभावको मस्तिष्क तक ले जाता है, वहाँ इसका संवेदन दुःखरूप प्रतीत होता है और दूसरा तन्तु जिसका कार्य्य मस्तिष्कसे आज्ञा लाना है आज्ञा लाता है कि अंगुली हटा लो और मांसपेशियोंके तनावके कारण अंगुली सुई परसे झट हट जाती है। इस प्रकार मनको बाह्य संसारका ज्ञान होता है और बाह्य संसारका प्रभाव मन पर पड़ता है।

मानसिक शक्तियोंको पुष्ट और विकसित करनेके हेतु शक्तियोंका निरन्तर उपयोग करते रहना आवश्यक है। उपयोगहीन वस्तु निर्बल होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। यथा फकीरोंका ऊर्ध्व बाहु सूखकर कार्य्य-हीन बन जाता है और लुहारका एक हाथ बलवान् हो जाता है। मनुष्य-शक्तियोंका विकास और संवर्धन ३५ वर्षकी अवस्था तक होता है। तत्पश्चात् मन कोई नवीन पद्धति स्वीकार नहीं करता। यही कारण है कि प्रत्यक्ष सत्य बातको भी जो नवीन सिद्ध हुई हो वृद्ध पुरुष स्वीकार नहीं करते और अपनी पुरानी लकीरके फकीर बने रहते हैं। हम प्रतिदिन देखते हैं कि भाषा वेश आदिमें परिवर्तन आने पर भी वृद्ध लोग अपनी पुरानी चाल पर ही चलते रहते हैं।

मनोविज्ञान प्रत्येक प्रकारके प्रत्येक व्यक्तिके जानने योग्य विद्या है। संसारके सकल कर्म मनसे सम्बन्ध रखते हैं। संसारमें सफलता और आनन्द प्राप्तिके लिये मनकी वृत्तियोंका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस विद्याके बिना साहित्य, कला और विज्ञान समझमें नहीं आते और स्वाध्यायका पूर्ण आनन्द नहीं उठाया जा सकता। यह माता-पिता, अध्यापक, उपदेशक और व्यापारियोंके बड़े कामका ज्ञान है। इन लोगोंकी सफलता इस बातपर अवलम्बित होती है कि दूसरोंपर इनका कितना प्रभाव पड़ता है। यह जब तक सम्भव नहीं तब तक ये दूसरों पर प्रभाव जमाना न जानते हों। मनको प्रभावान्वित करनेके लिये मनकी कार्य्यशैलीका ज्ञान होना चाहिये। उदाहरणमें बालशिक्षा लो। मनोविज्ञानने शिक्षापद्धतिको ही बदल दिया है। प्राचीन ताड़न-पद्धतिको हटाकर प्रेम-पद्धतिका प्रचार कर दिया है। पहले यह समझा जाता था कि बालकको जितनी ताड़ना की जाय उतना ही लाभ है वह अधिक शिक्षा ग्रहण करता है। यह सिद्ध करना मनोविज्ञानका ही कार्य्य है कि भयसे बालबुद्धि विकसित नहीं होती। भयसे एक वस्तु तोतेके समान रटी जा सकती है परन्तु आनन्दपूर्वक अपनी नहीं बनाई जा सकती, अर्थात् उसे समझकर रुचिपूर्वक बालक अपने ज्ञानका अंग नहीं बना सकता। प्रेम-पाशमें बँधकर एक बालक अध्यापकके प्रभावमें सरलतापूर्वक आ जाता है, जो कुछ अध्यापक सिखाना चाहता है खुशी खुशी सीख जाता है। मनोविज्ञानको जानकर एक उपदेशक श्रोताओंकी विचारशक्ति दबाकर विकारशक्तिको भड़काता है और सामयिक रुचिकारक बातें नवीन ढंगसे कहता है। मनोविज्ञानके आधारपर अमरीकामें एक विद्या बन गई है कि माल किस प्रकार बेचा जाय। यदि किसी दुकानदारसे कोई ग्राहक माल न खरीदे और वापिस चला जाय तो उस दुकानदार पर अमरीकामें जुर्माना होता है कि तुमको प्रभाव डालना नहीं आता, तुम माल बेचना

नहीं जानते । अमरीकाके दुकानदारोंका यह विचार है कि यदि हम किसी ग्राहकको नहीं बना सके तो ग्राहकका नहीं किन्तु हमारा कुसूर है । हम अपने मालकी यथायोग्य बड़ाई और ग्राहककी भली प्रकार तसल्ली नहीं कर सके । दूसरी तरफ हमारे भारतके दुकानदार हैं जो यह भी नहीं जानते कि व्यापार किस चिड़ियाको कहते हैं । देहलीमें जाओ और देखो । यदि आप किसी दुकानसे माल न लेंगे तो आपको गालियाँ सुननी पड़ेंगी । दुकानदार लड़नेको तैयार हो जायगा और आप क्षुब्ध हो कर उन दुकानोंसे माल लेनेका नाम भी कभी न लेंगे ।

मनोविज्ञानका उपयोग अनेक मस्तिष्कके रोगोंमें भी सफलतापूर्वक होने लगा है । मूर्खों, बदमाशों, दोषियों और पागलोंकी दशा सुधारनेका मनोविज्ञान एक बलवान् साधन है । असाधारण मनोंका ज्ञान इन अभागोंकी दशा सुधारनेमें बहुत सहायक होता है । और छोटे जानवरोंके जीवनोंका स्वाध्याय करनेके लिये भी मनुष्यको मनका ज्ञान अनिवार्य्य है ।

रोचक प्रश्नावली ।

(१) लोग कहते है–' देखना विश्वास करना है । ' क्या देखी बात कभी असत्य नहीं हो सकती ?

(२) मनोविज्ञान सर्व विज्ञानोंकी माता है, कैसे ? सिद्ध करो ।

(३) मनोविज्ञानके स्वाध्यायसे संतान-पालनमें माता पिताको क्या सहायता मिलती है ?

(४) बालकोंकी पाठशालामें अध्यापक कैसा होना चाहिये ? कुरूप और कठोर व्यक्तिका प्रभाव बालकोंपर क्या पड़ता है ?

(५) ' भारतके व्यापारी ' इस विषयपर एक छोटासा निबन्ध लिखो ।

दूसरा अध्याय ।

स्वाद और गन्ध ।

मानसिक प्रमेय (Mental Phenomena) की दृष्टिसे संवेदन (Sensation) पर सामान्य विचार किसी अन्य अध्यायमें करेंगे। यहाँ शारीरिक दृष्टिसे संवेदनको दो भागोंमें विभाजित करते हैं।

सामान्य संवेदन (General sensation) वे होते हैं जो समग्र शरीर पर प्रभाव डालते हैं—यथा, थकावट।

विशेष संवेदन (Special sensation) वे होते हैं जो पंच ज्ञानेंद्रियोंके तन्तुओंके प्रभावान्वित होनेसे उत्पन्न होते हैं। यथा, गन्ध, शब्द आदि। सामान्य संवेदन वास्तवमें विशेष संवेदनोंके परिवर्तित रूप हैं। भिन्नता इतनी है कि मन उस संवेदनको जिसको सामान्य कहते हैं किसी विशेष इंद्रियपर नहीं लगा सकता।

विशेष इंद्रियाँ सँख्यामें पाँच हैं। इनका व्यापार बाह्य संसारसे प्रभावका लेना और संवेदन तन्तुओं द्वारा मनको पहुँचा देना है। इन पंच ज्ञानेंद्रियोंके बिना मनको बाह्य संसारका ज्ञान नहीं हो सकता और न मन किंसी प्रकार विचार कल्पनादि कर सकता है। विचार आदि सब इंद्रियजनित ज्ञानके आधार पर होते हैं। जब सामान ही नहीं तो मंदिर कैसे खड़ा हो? अतः इंद्रियोंकी आवश्यकता जितनी अधिक समझी जाय थोड़ी है।

अब हम पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंका वर्णन करेंगे और देखेंगे कौन इंद्रिय मनके वास्ते कितना सामान प्रस्तुत करती है। प्रथम हम उस इंद्रियको लेते हैं जो सबसे न्यून सामान देती है। फिर उसका विवरण देंगे जो इससे अधिक और फिर इससे अधिक, इसी क्रमसे पाँचोंका उल्लेख करेंगे। विद्वानोंने यह क्रम इस प्रकार नियत किया है—स्वाद, घ्राण, श्रवण, दृष्टि और स्पर्श। प्रत्येक विद्यार्थी स्वयम् इस बातकी परीक्षा कर सकता है कि

क्या यह क्रम ठीक है या नहीं और यदि नहीं तो क्या होना चाहिये ।
मनोविज्ञानमें यह बड़ी सरलता है कि जाँचनेवाला और जाँच किया जानेवाला दोनों संग हैं। जिस समय चाहें जाँच हो सकती है और प्रत्येक बाल, वृद्ध, स्त्री पुरुष इस जाँचका विषय बनाया जा सकता है।

स्वादकी इंद्रिय मनको संसारका वास्तविक ज्ञान न्यूनतम प्रस्तुत करती है। हम अपने अनुभवोंमें स्वादका भाग बहुत समझते हैं परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो विदित होगा कि जितना हम समझते हैं वह उतना नहीं है।

स्वादकी इंद्रिय जिह्वा और कोमल तालु है। इनमें छोटी छोटी कलियोंके आकारकी वस्तु पाई जाती हैं जिनका संबन्ध स्वादतन्तु या नाड़ीसे होता है। जब कभी किसी द्रवणशील या घुलनेवाली वस्तुका इन कलियोंसे संबन्ध होता है तो स्वाद-नाड़ी द्वारा वह प्रभाव मस्तिष्कमें पहुँचता है और स्वादका संवेदन उत्पन्न हो जाता है। निस्संदेह यह क्रिया रासायनिक होती है। हम केवल द्रवणशील या घुलनेवाली वस्तुका स्वाद ले सकते हैं। जो वस्तु घुलनेवाली नहीं उसका स्वाद नहीं ले सकते। उदाहरणके लिये हम काँचके टुकड़े मुखमें रखकर परीक्षा कर सकते हैं। परन्तु स्वाद इंद्रियकी परीक्षा करनेके समय दोनों नासिकायें अवश्य बन्द रखनी चाहिये। रुईकी या मोमकी बत्ती देकर नासिका बन्द कर सकते हैं, किन्तु नासिका अच्छी तरह बन्द रखनी आवश्यक है।

सभ्य समाजोंमें स्वादशक्ति अत्यन्त बढ़ गई है और लोग नाना प्रकारके स्वादोंमें अपना अधिकांश धन और समय नष्ट करने लगे हैं। प्राचीन रोमके बादशाह केवल एक थाल भोजन पर लाखों रुपया लगा दिया करते थे। अफरीका और अरबतकके बेचारे मोरोंकी शामत आती थी। नित्य सहस्रोंकी संख्यामें जीवन और जिह्वाहीन किये जाते थे। बहुतसे मनुष्य आज भी चखने मात्रसे यह बता देते हैं यह चाय अमुक

स्थानमें उत्पन्न हुई है और यह मछली ऐसे पानीमेंसे पकड़ी गई है। अन्य जानवर स्वादपर ध्यान नहीं देते और यदि देते हैं तो अत्यन्त कम। जानवरोंमें घ्राणशक्ति अधिक बलवती होती है।

मुख्य स्वाद चार हैं—मीठा, खट्टा, कड़वा और नमकीन। अन्य जितने प्रकारके स्वाद हैं सब इनके मेलसे बनते हैं। कोई कोई विज्ञान-पंडित दो स्वाद और मुख्य समझते हैं; परन्तु खारी और धातुके स्वाद केवल स्वाद और स्पर्शके मिलापके परिणाम हैं कोई स्वतन्त्र स्वाद नहीं।

हम जो स्वाद साधारणया प्राप्त करते हैं वह केवल स्वाद ही नहीं होता किन्तु उसमें स्पर्श, गन्ध और दृष्टिका भी भाग सम्मिलित रहता है। तुम यह जानकर आश्चर्यान्वित होगे यदि तुम यह परीक्षा करो कि बिना आँख, नाक और त्वचाकी सहायताके तुम कितने थोड़े पदार्थोंका नाम केवल स्वाद मात्रसे बता सकते हो। जितने पदार्थ मुखमें जाते हैं वे सब मुखसे स्पर्श करते हैं। अतः स्वादके संग संग स्पर्शकी भी क्रिया होती रहती है। गन्धका मुखसे सीधा सम्बन्ध है और मुखमें पदार्थ छिन्नभिन्न हो कर उड़ते भी हैं जिनसे गन्ध उत्पन्न होता है, अतः गन्धका प्रभाव स्वाद पर बहुत अधिक पड़ता है। जुकामके रोगमें जब गन्धशक्ति निर्बल पड़ जाती है जलका स्वाद कुछ औरका और ही हो जाता है, भोजनमें आनन्द नहीं रहता। यद्यपि स्वादशक्तिमें कोई न्यूनता नहीं आती परन्तु स्वाद नितान्त बदल जाता है। परीक्षाके लिये आलू, प्याज, सिरका, कुनैन आदि वस्तुओंका नाक बंद करके स्वाद लो और नाक खोल कर स्वाद लो। इस परीक्षासे भले प्रकार विदित हो जायगा कि साधारण स्वादमें गन्धका कितना अधिक भाग होता है।

स्वादपर आँखोंका प्रभाव भी कुछ कम नहीं पड़ता। एक सुन्दर मनोहर सेब, अनार, या आम यदि खाया जाय तो अधिक स्वादिष्ट होता है। सुन्दर भोजन सुथराई और सफाईसे परोसा हुआ कुछ और ही ढंगका

रोचक और स्वादिष्ट होता है, किन्तु वही भोजन अरोचक दशामें परोसने-से बिल्कुल स्वादहीन प्रतीत होने लगता है। बहुत स्वादोंमें स्पर्श-संवेदन भी सम्मिलित रहता है। यथा—मीठी और खट्टी वस्तुयें खानेसे एक रोचक सनसनाहट उत्पन्न होती है और नमकीन और कड़वी चीजें खानेसे एक प्रकारकी सुकड़न पड़ जाती है। कोमल, कठिन और खुरदरे पदार्थोंको मुखमें रखनेसे प्रत्यक्ष पता लग जाता है कि स्वादमें स्पर्शका कितना भाग है।

सारांश यह है कि स्वादमें गन्ध, स्पर्श और दृष्टि भी मिश्रित रहती है और जिसको हम स्वाद कहते हैं वह केवल स्वाद ही नहीं किन्तु एक मिश्रित संवेदन होता है। विद्यार्थी विचार करें कि क्या स्वाद पर प्रेमका प्रभाव भी पड़ता है? क्या यह कहावत सत्य है कि "प्रेमका जल भी दूधसे बढ़कर है"? और क्यों?

सर्व कड़वी वस्तुओंका स्वाद कड़वा होता है। यह बात दूसरी है कि किसीका अधिक कड़वा और किसीका कम। कड़वासमें एक स्वाद है। उदाहरणके लिये नीम, बादाम और कुनैन चक्खो। यही नियम अन्य तीनों स्वादोंका भी है। नमकीन नमकीन, खट्टा खट्टा और मीठा मीठा। कोई अधिक कोई न्यून। अंश-भेद है प्रकार-भेद नहीं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मनको स्वादद्वारा न्यूनतम सामग्री मिलती है किन्तु इस इंद्रियकी आवश्यकता कम समझना भूल है। स्वाद इतना ही जरूरी है जितनी अन्य इंद्रियाँ। स्वाद शरीरके लिये प्राकृतिक डाक्टरका कार्य्य करता है। जो पदार्थ खानेमें रोचक होते हैं वे शरी-रके वास्ते लाभकारी होते हैं, किन्तु जो वस्तुयें बुरे स्वादवाली होती हैं उनका प्रभाव भी शरीरपर बुरा पड़ता है। स्वादिष्ट वस्तुयें बल बुद्धि बढ़ाती हैं और बुरे स्वादवाली वस्तुयें बल बुद्धिका नाश करके शरीरमें

रोग बढ़ाती हैं। बहुधा मनुष्य मिरच आदि बुरे स्वादवाली वस्तुओंका अभ्यास कर लेते हैं और उनको स्वादिष्ट समझने लग जाते हैं। परन्तु जब हानि होती है तो विज्ञानको दोषी ठहराते हैं कि देखो स्वादिष्ट वस्तुने हानि की। किन्तु यह दोष प्रकृति देवीका नहीं। प्रकृतिके सिद्धान्त तो अटल हैं। यह दोष स्वयं हमारा है। अभ्यास दूसरी प्रकृति बन जाता है। जैसा अभ्यास करोगे वैसा स्वभाव पड़ जायगा। बालकको मिरच खिलाकर देखो, क्या मिरच स्वादिष्ट है ?

प्रत्येक संवेदनका एक आरम्भ और दूसरा अन्त होता हैं। इसको संवेदन-द्वार (Threshold of sensation) कहते हे। जहाँसे संवेदन आरम्भ होता है उसको आदि-संवेदन-द्वार और जहाँ अन्त होता है उसको अन्त-संवेदन-द्वार कहते हैं। यदि एक सेर जलमें एक रत्ती चीनी मिलाई जावे तो मिठास मालूम नहीं होगा। हाँ यदि एक एक रत्ती उत्तरोत्तर बढ़ाते जायँ तो एक समिा ऐसी आजायगी जहाँ मिठासका आरम्भ विदित होने लगेगा। यही सीमा आदि-संवेदन-द्वार कहाती है। यदि उस जलमें मीठा मिलाये जायँ तो मिठास बढ़ता जायगा किन्तु एक ऐसी सीमा आवेगी जिसके पश्चात् अधिक मीठा मिलानेका कोई फल न होगा-कोई नवीन संवेदन नहीं आयगा संवेदन, यथापूर्व ही रहेगा। इस सीमाको अन्त-संवेदन-द्वारका नाम दिया जाता है। यदि ऐसा न होता तो संसारके सूक्ष्म सूक्ष्म झंझटोंमें पड़कर छुटकारा ही न होता और वायुमंडलके परिवर्तनोंके फेरमें पड़कर लोग रात दिन कष्ट भोगा करते तथा जविन धारण करना कठिन ही नहीं नितान्त असम्भव हो जाता। यह प्रकृति देवीकी महती कृपा है कि हम दोनों सीमाओंसे बचे हुए हैं। ऐसा बहुत बार देखनेमें आता है कि अधिक चोट लगने पर मनुष्य संज्ञाहीन हो जाता हे, क्यों कि संवेदन अन्त-संवेदन-द्वारसे परे पहुँच गया है जिसका सहन करना मनुष्य-संस्थान (Human

system) की शक्तिके बाहर है। यह नियम सर्व इंद्रियों पर लागू होता है।

निम्नलिखित वस्तुओंका आदि-संवेदन-द्वार यह है--२०० भाग जलमें एक भाग मीठा, मीठा स्वाद, २५०० भाग जलमें एक भाग नमक, नमकीन स्वाद, ३५०० भाग जलमें गन्धकका तेजाब, खट्टा स्वाद, और पाँच लाख भाग जलमें एक भाग कुनैन, कड़वा स्वाद देना प्रारम्भ कर देते हैं, अर्थात् जलमें वस्तुका स्वाद प्रतीत होना आरम्भ हो जाता है। ५ मन जलमें मिठास उत्पन्न करनेके लिये कमसे कम एक सेर शक्करकी आवश्यकता है, इससे कम मिलाई जायगी तो मिठास प्रतीत नहीं होगा।

सर्व इंद्रिय-संवेदनों पर संवेदन-द्वारका सामान्य नियम प्राप्त करनेके लिये, वर्तमान मनोविज्ञानज्ञ पंडितोंने असंख्य परीक्षायें की हैं, परन्तु सर्व इंद्रियोंके वास्ते इस प्रकारका सामान्य नियम बनाना असम्भव प्रतीत होता है। हाँ भारके संवेदनके सम्बन्धमें संवेदन-द्वार-परिवर्तनका एक नियम बना है जो लगभग सत्य है और कुछ सीमाओंके अन्तर्गत ही कार्य्य करता है। संवेदन-द्वार-परिवर्तनसे हमारा यह अभिप्राय है कि एक मनुष्यके हाथ पर तीन सेर भार रक्खा है तो कमसे कम कितना भार और रक्खें कि उस व्यक्तिको प्रथम भारमें प्रथम बार परिवर्तन प्रतीत हो। इस नियमको बेवर या फैकनरका नियम कहते हैं। इन महानुभावोंने यह जाननेके वास्ते कि नवीन भार-संवेदन उत्पन्न करनेके लिये न्यूनतम कितनी बढ़ती या घटतीकी आवश्यकता है बड़ा परिश्रम किया है। अनेक मनुष्योंपर परीक्षा करनेके पश्चात् यह नियम बनाया गया कि भार-संवेदनमें परिवर्तन उत्पन्न करनेके लिये संवेदन उत्पन्न करनेवाले प्रथम उत्तेजक या भारमें उसका एक-तिहाई भार बढ़ाना या घटाना आवश्यक है। यदि एक मनुष्यके हाथ पर तीन सेर भार रक्खा है और हम संवेदनका परिवर्तन

चाहते हैं, तो तीन सेरका तिहाई एक सेर भार अधिक बढ़ाना या घटाना होगा। यदि एक सेरसे कम बढ़ाया या घटाया जायगा तो संवेदन पहलेवाला बना रहेगा और उसमें कोई परिवर्तन प्रतीत नहीं होगा। किन्तु यदि भार चार सेर है तो एक सेरके स्थानमें एक सेर और पाँच छटाकके लगभग भार बढ़ाना या घटाना पड़ेगा। इसी प्रकार ३० सेरमें १० सेर, नौ छटाकमें तीन छटाक इत्यादि।

यह प्रथम ही लिखा जा चुका है कि भार-संवेदन-द्वारका यह नियम कुछ सीमाओंके अन्तर्गत कार्य्य करता है। यदि उत्तेजक असंख्य गुना बढ़ा दिया जाय तो संवेदनमें कोई परिवर्तन नहीं होगा। और यदि एक मच्छरका तीसरा भाग एक मच्छर भार पर बढ़ा या घटा दिया जाय तो भी संवेदनमें कोई भेद नहीं पड़ता। अत्यन्त कम और अत्यन्त अधिक पर यह नियम नहीं लगता—केवल मध्यम श्रेणी पर चलता है।

वस्तुओंके स्वाद भिन्न भिन्न होते हैं। सर्व वस्तुओंका स्वाद-संवेदन-द्वार जानना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। विद्यार्थियोंको चाहिये कि उन्हें जिस वस्तुका स्वाद-संवेदन-द्वार मालूम करना अभीष्ट हो उसको किसी प्रामाणिक औषधालयसे खरीद लें। यदि ऐसें वैसे स्थानसे खरीद होगी तो यह विदित नहीं होगा कि इस वस्तुमें असली वस्तुका कितना भाग है, अर्थात् यह वस्तु कितने प्रतिशतककी ताकतवाली है। उस वस्तुमें जलकी नियत बूँदें मिलाओ और एक बूँद जिह्वा पर रक्खो। आवश्यकतानुसार उस लोशनकी ताकत घटाओ और बढ़ाओ और अनुभव करो कि उस वस्तुका स्वाद कहाँसे प्रारम्भ होता है, अर्थात् कितने जलमें कितनी वस्तु मिलनेसे उस वस्तुका स्वाद प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार और और वस्तुओंकी परीक्षा करनेसे उनका संवेदन-द्वार ज्ञात हो सकता है। परन्तु स्वादका कोई सामान्य नियम बनाया नहीं जा सकता। क्योंकि भिन्न भिन्न वस्तुओंके स्वाद भिन्न भिन्न होते हैं और वस्तुयें

अनेक हैं। हम यह नहीं कह सकते कि शक्कर इतनी ही मीठी है जितनी कुनैन कड़वी या जितना सिरका खट्टा।

स्वादकी अधिकता (Intensity) वस्तुकी अधिकतापर निर्भर है। पाँच प्रतिशतकका लोशन इतना स्वादवाला नहीं होता जितना दश प्रतिशतकवाला लोशन। एक तोलाभर नमकका स्वाद पावभर नमकके स्वादसे निर्बल होता है।

एक वस्तुका स्वाद-संवेदन दूसरी वस्तुके मेलसे अधिक प्रबल बनाया जा सकता है। यथा कड़वी चीज खानेके पश्चात् मीठी चीज अधिक मीठी प्रतीत होती है और मीठी वस्तुपर खट्टी वस्तु अधिक खट्टी मालूम होती है। इसी प्रकार स्वादपर सरदी और गरमीका असर भी पड़ता है। गरम पानी कुछ समय तक मुखमें रखनेके पश्चात् यदि शक्कर खाई जाय तो मीठा स्वाद नहीं आयगा। ऐसे ही बरफ खानेके बाद कोई संवेदन विदित न होगा। विद्यार्थी स्वयम् इस बातकी परीक्षा करके देख लें।

स्वादमें एक बात और अद्भुत है। जिह्वा और कोमल तालुके भिन्न भिन्न भाग अपना अलग अलग स्वाद ग्रहण करते हैं और अन्य स्वादको ग्रहण नहीं करते। मीठा और खट्टा जिह्वाके अग्र भागपर, नमकीन स्वाद दोनों किनारोंपर और कड़वा मुखके पिछले भागपर मालूम होता है। यदि कुनैनकी गोली खाना चाहो तो उसे मुखके पिछले भागपर मत रक्खो, वहाँ कड़वास अधिकतम प्रतीत होगा। यहाँ यह बताना भी अनुचित न होगा कि मीठा क्षुधा घटाता है और कड़वा क्षुधा बढ़ाता है। खट्टा पियास बुझाता है और नमकीन पिपासा भड़काता है।

घ्राण (Smell)

जैसे पेटके वास्ते स्वादेंद्रिय द्वारपालका कार्य्य करती है वैसे ही घ्राण या गन्ध इंद्रिय फेफड़ोंकी रक्षक है। फेफड़ोंके वास्ते जैसी वायुकी

आवश्यकता है वैसी वायुको बताना घ्राणका कर्तव्य है, अन्यथा कोमल फेफड़े विषैली वायुसे घुटकर प्राणघातक हो जाते हैं। आजकल इस इंद्रियको आनन्दकारी भी बना लिया है। शौकीन लोग सुगन्धित चीजोंके लिये सहस्रों रुपया व्यय कर देते हैं।

गन्ध शक्तिकी इंद्रिय नाकमें एक कोठरीसी है। किसी वस्तुके परमाणु उस कोठरी तक पहुँचने पर गन्धका संवेदन होता है, परन्तु गन्ध-संवेदन प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि वस्तु गैसके प्रकारका हो या गन्ध उड़ानेवाला हो, यथा-पुष्प, कपूर, कस्तूरी। जिस समय गैस या उड़नेवाले परमाणु एक वस्तुसे निकलकर नासिका द्वारा गन्ध-कोठरीमें पहुँचते हैं उस समय रासायनिक क्रिया द्वारा गन्ध-नाड़ी प्रभावान्वित हो जाती है। प्रभाव मस्तिष्कमें पहुँचता है और गन्धका संवेदन उत्पन्न हो जाता है। यदि किसी वस्तुको बलपूर्वक सूँघा जाय तो अधिक बलवती गन्ध प्रतीत होगी।

हम स्वादकी बाबत बता चुके हैं कि मुख्य स्वाद चार प्रकारके होते हैं; परन्तु गन्धकी बाबत कोई निश्चय नहीं कर सकते कि मुख्य मुख्य गन्ध कौन कौन और कितनी हैं। भिन्न भिन्न वस्तुओंकी भिन्न भिन्न गन्ध होती है। यह गुलाबकी गन्ध है, वह केवड़ेकी गन्ध है और वह चमेलीकी गन्ध है, इत्यादि असंख्य गन्धें हैं जिनके लिये किसी विशेष नियमकी रचना करना नितान्त असम्भव है। यद्यपि गन्ध अनेक हैं परन्तु केवल घ्राणकी सहायतासे हम बहुत थोड़े पदार्थोंको पहिचान सकते हैं। गन्ध और स्वाद मिलकर बहुत वस्तुओंको जान लेते हैं किन्तु अकेला घ्राण बहुधा गलती खा जाता है, इस लिये कि अनेक गन्धें परस्पर बहुत कुछ समान होती हैं। बहुधा लोग कहा करते हैं कि यह गन्ध मीठी है, परन्तु मिठास गन्धका अपना गुण नहीं है—कोई

गन्ध संवेदनमें मीठी नहीं होती। यह नाम तो गन्धके उस प्रभावका है जो मनुष्यकी विकार-वृत्तिपर पड़ता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि एक व्यक्ति एक गन्धको अच्छी कहकर पसन्द करता है और दूसरा व्यक्ति उसी गन्धको खराब समझता है और घृणा करता है। कोई मनुष्य किसी गन्धको आनन्ददायक समझता है और कोई किसी अन्यको आनन्द-दायक और उसको दुःखदायक खयाल करता है। जो गंन्ध एक मनुष्यकी विकार-वृत्तिपर जैसा प्रभाव करती है उस गन्धको वह वैसा ही नाम देता है।

जानवरोंमें सूँघनेकी शक्ति मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक प्रबल होती है। कुत्ता घ्राण शक्तिसे बहुत कार्य्य लेता है। यह जानवर गन्धसे वायुकी परीक्षा कर लेता है; शत्रु और मित्रको पहिचान लेता है और शिकारको खोज निकालता है। केवल गन्धकी सहायतासे कुत्ता शिकारके पीछे मीलों भागा चला जाता है। केवल गन्ध मात्रसे चींटियाँ यह जान लेती हैं कि अमुक चींटी हमारे समुदायकी नहीं और उसको मार देती हैं। यदि उसी समुदायकी एक चींटीको मारकर अन्य चींटी पर मृतक चींटीका रस छिड़क दें तो फिर वह नहीं पहिचानी जायगी और उसी समुदायमें मिल जायगी। मनुष्योंमें स्वाद और जानवरोंमें घ्राण शक्तियाँ प्रबल होती हैं और असभ्य समाजोंकी अपेक्षा सभ्य समुदायोंमें स्वाद अधिक आव-श्यक भाग लेता है।

कतिपय मनुष्य गन्धशक्तिको इतना पुष्ट कर लेते हैं कि केवल गन्धसे बता सकते हैं कि यह चाय कहाँकी है और यह शराब कहाँ बनी है और कितने दिनोंकी बनी हुई है।

यह परीक्षा करनेके लिये कि हम कितने पदार्थोंको केवल गन्धसे पहिचान सकते हैं आँखों पर कपड़ा बाँध कर वस्तु पहिचानो। और

यह जाननेके वास्ते कि पशुओंमें गन्धशक्ति कितनी प्रबल होती है, सोती हुई बिल्लीके कमरेमें छाल छलीरा (Catmint) धीरेसे ले जाओ। अन्य जानवरों पर भी परीक्षा करो।

घ्राणशक्तिमें यह विशेषता है कि यह शीघ्र थक जाती है। डोम (Sweepers) सर्वदा गन्दगीमें रहते हैं किन्तु उनको गन्दी गन्ध प्रतीत नहीं होती। यदि हम एक पदार्थको थोड़े समय तक सूँघते रहें तो कुछ समयके पश्चात् उस वस्तुकी गन्ध मालूम नहीं होगी। कारण यह है कि घ्राण इंद्रिय उस विशेष गन्धके लिये थक जाती है। किन्तु यदि कोई अन्य प्रकारकी गन्ध सूँघी जायगी तो गन्ध बराबर आयगी। यथा हम गुलाब-का इत्र सूँघने सूँघते थक गये और गुलाबकी गन्ध आनेसे बन्द हो गई तो यह नहीं हो सकता कि चमेलीकी गन्ध भी प्रतीत नहीं होगी, परन्तु चमेली-की गन्ध अवश्य आयगी। इस विषयका एक रोचक उदाहरण है। किसी एक साहूकार किसानके घरकी बेटी एक गरीब किसानके घर विवाही गई। इस किसानके घरमें पशुओंका गोबर और पेशाब बहुत पड़ा रहता था। नववधूने एक दिन अपनी साससे शिकायत की कि तुम्हारे घरमें दुर्गन्ध आती है। परन्तु कुछ समयके पश्चात् एक दिन वह युवती रमणी अपनी वृद्धासे फिर कहने लगी कि माताजी देख लो मेरे आनेसे तुम्हारे घरसे दुर्गन्ध जाती रही। उस वृद्धाने उत्तर दिया कि बेटी मेरे घरमें तो दुर्गन्ध यथापूर्व ही है, किन्तु अब तेरी दुर्गन्ध अनुभव करनेकी शक्ति जाती रही है। परन्तु थकावटका प्रभाव थकानेवाली गन्धपर ही पड़ता है, अन्य गन्धोंके लिये घ्राण नहीं थकती और उनको यथापूर्व ग्रहण करती रहती है।

रोचक प्रश्नावली।

(१) घ्राणसे मनको कितना सामान मिलता है और स्वादसे कितना ?

(२) घ्राण शक्तिके नष्ट होने पर हमारा कितना आनन्द जाता रहे और स्वादके नष्ट पर कितना ?

(३) हमारे दो नासिका क्यों है ? यदि एक होती तो क्या हानि थी ?

(४) यदि ऐसा कोई समय आपड़े कि गन्ध और स्वादमेंसे एक शक्ति अवश्य खोनी पड़े तो तुम किस इंद्रियको खोना पसन्द करो और क्यों ?

(५) स्पर्शका घ्राण पर कितना प्रभाव पड़ता है ?

(६) मनुष्योंसे जानवरोंकी गन्धशक्ति क्यो अधिक है ? क्या हम भी इस शक्तिको जानवरोंके समान कर सकते है ?

(७) स्वाद-संवेदन-द्वार क्या है ? और क्या गन्ध-संवेदन-द्वार भी बन सकता है ? यदि हाँ, तो गुलाबके विषयमें गन्ध-संवेदन-द्वार परीक्षा करके बताओ।

(८) स्वाद और गन्धके सम्बन्धमें अधिक जाननेके लिये तीनों साधनोंमेंसे कौन अधिक उपयोगी होगा और क्यों ?

तीसरा अध्याय ।

श्रवण ।

गत अध्यायमें हम स्वाद और घ्राण दो इंद्रियोंका विवरण लिख चुके हैं किन्तु श्रवण इंद्रियका स्थान इन दोनोंसे ऊँचा है। मनको सामग्री पहुँ-चानेमें श्रवण अधिक कार्य्य करता है । यह बहुत दूरसे उत्तेजकको ग्रहण कर लेता है। इस इंद्रियका विषय शब्द है। वायुकी लहरें उठती हैं और उन लहरोंमें कम्पन होता है। जब वह कम्पन श्रवण तक पहुँच-कर अपना प्रभाव डालता है तब प्रभाव श्रवण—नाड़ी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचाया जाता है जहाँ शब्द-संवेदन उत्पन्न होता है। श्रवण इंद्रिय अत्यन्त जटिल है। इसका संगठन भली प्रकार जाननेके लिये शरीर-विज्ञानका अनुशीलन करना आवश्यक है । साधारणतया इसके तीन भाग होते हैं—एक बाह्य, दूसरा मध्य और तीसरा आन्तरिक। बाह्य भाग द्वारा वायुकम्पन जमा किये जाते हैं और मध्य भागमें पहुँचाये जाते हैं। वहाँ एक झिल्ली लगी होती है जिसको कानका परदा कहते हैं। वायुकम्पन उस परदेसे टकराते हैं और आन्तरिक भाग पर प्रभाव करते हुए श्रवण-नाड़ी द्वारा मस्तिष्क तक चले जाते हैं और शब्दका संवेदन हो जाता है। कहनेको तो यह बात सरल प्रतीत होती है परन्तु इस शब्द-यन्त्रको देखनेसे प्रकृतिके कौशल और चातुर्य्यका पता लग जाता है कि ऐसा जटिल और लाभकारी यन्त्र जिस शक्तिने बनाया है, वह शक्ति अवश्य महान् है। इसके आन्तरिक भागके चक्करमें फँस कर बुद्धि चक्कर खा जाती है।

श्रवण-यन्त्र या कानमें वायुकम्पनोंके प्रविष्ट होनेसे अनेक प्रकारके शब्दसंवेदन उत्पन्न होते हैं। मनुष्यकी श्रवण इंद्रिय कमसे कम १२ कम्पन

प्रति सेकंड और अधिकसे अधिक ६० सहस्र प्रति सेकंड वायुकम्पन ग्रहण कर सकती है। प्रति सेकंड १२ कम्पनसे कम होंगे तो कोई शब्द-संवेदन नहीं होगा और (६००००) साठ सहस्र कम्पन प्रति सेकंडका प्रभाव भी मानुषी श्रवण इंद्रिय पर नहीं पड़ता । ये दो सीमायें हैं जिनसे परे मानुषी शक्ति कार्य्य नहीं करती । परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति इन सीमाओं तक अवश्य ही सुनता है । यह तो अधिकतम सीमायें हैं । बहुत मनुष्य ४० प्रति सेकंडसे कम नहीं सुन सकते और अन्य ४०००० से अधिक नहीं ग्रहण कर सकते । यह इंद्रियकी शक्ति पर निर्भर है, किन्तु मनुष्यकी शब्द इंद्रिय प्रति सेकण्ड १२ से कम और ६०००० से अधिक वायुकम्पनोंसे प्रभावित नहीं हो सकती । यह इंद्रिय शब्दको बहुत शीघ्र ग्रहण कर लेती है । यदि हम कान बन्द कर लें तो नाड़ियोंमें रक्त संचालनका शब्द तक सुनाई देता है जिसको कुछ लोग अनहद नाद कहते हैं और जिसके पीछे पड़कर अपना सारा जीवन व्यर्थ गवाँ देते हैं ।

जितने शब्द हम सुन सकते हैं वे सब दो प्रकारके होते हैं । एक प्रकारको सुरीले शब्द और दूसरेको शोर कहते हैं । सुरीले शब्द और शोर कोई नितान्त भिन्न वस्तु नहीं हैं । समयानुसार एक ही शब्द सुरीला और शोर प्रतीत होने लगता है ।जो शब्द हमको आनन्द देते हैं वे सुरीले कहाते हैं और जो कटु प्रतीत होते हैं वे शोर समझे जाते हैं। अँगरेजोंका गाना हम भारतवासियोंको शोर मालूम होता है, परन्तु उसे ही अँगरेज स्त्री-पुरुष सुन कर आनन्दसे नाच उठते हैं । प्रयागमें एक समय बैंड बज रहा था । झुण्डके झुण्ड अँगरेज स्त्री-पुरुष सज धजकर चले आ रहे थे और जो वहाँ फिर रहे थे सबके सब आनन्दसे मस्त जान पड़ते थे; परन्तु मैंने और मेरे ८–१० मित्रोंने कुछ समय तक श्रवण करके यही निश्चय किया कि व्यर्थ शोर हो रहा है और तब हम सब बीचहीमें उठकर

चले आये। शब्द-प्रकार पर शिक्षाका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जो मनुष्य गाना जानता है वह स्वर तालकी बारीकसे बारीक गलती पकड़ लेता है जब कि अन्य मनुष्य केवल 'वाह वाह'के नारे मारते रहते हैं। एक ही वस्तुका शब्द भिन्न भिन्न दशाओंमें भिन्न भिन्न प्रभाव डालता है। यदि एक सितारका जाननेवाला सितार बजाता है तो आनन्दकी लहरें उठने लगती हैं; परन्तु एक गँवार उसी बाजेको बजाने लगता है तो हृदयमें एक चोटसी लगती है। और, जो वायुकम्पन शीघ्रतासे होते हैं और नियत समय पर उतार-चढ़ावके क्रमसे होते हैं उन कम्पनोंका शब्द-संवेदन सुरीला उत्पन्न होता है, किन्तु जिन कम्पनोंमें ये दो बातें नहीं होतीं वे शोर प्रतीत होते हैं।

सुरीले शब्दोंके तीन भेद हैं—एक श्रेणी, दूसरा भार और तीसरा गुण। शब्दकी ऊँचाई-निचाईको श्रेणी कहते हैं। कोई शब्द ऊँचा और कोई नीचा होता है। बहुतसे शब्द एक ही श्रेणीमें होते हुए मोटे और बारीक कहे जाते हैं, अर्थात् किसी मनुष्यकी बोली भारी और किसीकी हलकी होती है। इस मोटे और बारीकपनको या भारी या हलकेपनको भार कहते हैं। परन्तु मनुष्योंका शब्द काष्ठके शब्दसे भिन्न होता है और धातुओंके शब्द कुछ और ही ढंगके निकलते हैं। इस वस्तुभेदको गुण कहा जाता है।

वायु-मंडलमें एक प्रकारकी लहरें उठा करती हैं। इन लहरोंमें कम्पन होता रहता है। जब वह कम्पन हमारी श्रवण-इंद्रिय पर प्रभाव डालता है तो शब्द-संवेदन उत्पन्न होता है। परन्तु इस वायुकम्पनके दो प्रकार हैं जो एक उदाहरणसे भली भाँति समझमें आ जायँगे। एक डोर (Cord) लो और उसके दोनों छोर या सिरे खींचकर बाँध दो। फिर उसको बीचसे पकड़कर खींचो और छोड़ दो। अब तुम देखोगे कि उस डोरमें कम्पन उत्पन्न होता है। छोटी डोरमें कम्पन शीघ्रतासे अर्थात्

तेजीसे होता है और लम्बी डोरमें कम्पन ढीला अर्थात् मन्दा होता है। दूसरी बात जो तुम देखोगे वह यह है कि उस डोरसे परमाणु उड़ते हैं। परन्तु सब डोरोंसे समान परमाणु नहीं उड़ते, किसीसे कम किसीसे अधिक। वायुमंडलमें भी लहरें छोटी बड़ी बनती रहती हैं, सब लहरें समान नहीं होतीं। छोटी लहरोंका कम्पन शीघ्र और बड़ी लहरोंका कम्पन मन्दा होता है, और कुछ लहरोंसे कम्पनपरमाणु एक संग अधिक उड़ते हैं और कुछसे कम।

इन दो बातों पर शब्दकी श्रेणी और भार अवलम्बित हैं। जितना ही कम्पन शीघ्र होगा शब्द ऊँचा होगा और जितना ही कम्पन मन्दा होगा शब्द भी मन्दा होगा। सितार या सारंगी बजानेवालोंको देखो, जब उनको पंचम आदि ऊँचे स्वरोंको निकालनेकी इच्छा होती है, तो उनकी अंगुली नीचेके परदों पर पड़ती है, अर्थात् वे तारकी लम्बाई कम करते हैं और जब खरज आदि नीचे स्वर निकालने होते हैं तो अंगुली ऊपर जाती है, अर्थात् तारकी लम्बाई अधिक करते हैं।

दूसरे जितने अधिक कम्पनपरमाणु एक संग उड़ते हैं शब्द उतना ही भारी या मोटा होता है। जब श्रवण इंद्रिय पर एकसंग अधिक परमाणु प्रभाव डालते हैं तो प्रभावजनित संवेदन भारी प्रतीत होता है।

तीसरा भेद गुणका है। यह भेद वस्तुओंकी भिन्नता पर निर्भर है। वस्तु-भेदसे गुण-भेद उत्पन्न होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न भिन्न वस्तुओंसे भिन्न भिन्न प्रकारकी लहरें वायुमंडलमें पैदा होती हैं और शब्द इंद्रिय पर प्रभाव भी भिन्न भिन्न पड़ता है। धातु, काष्ठ, चाम, जानवर, मनुष्य आदि सब वस्तुओंके शब्दोंमें विभिन्नता है। जैसी जिस पदार्थकी बनावट होती है वैसा ही शब्द निकलता है।

यह प्रथम ही लिखा जा चुका है कि सारे मनुष्योंकी श्रवणशक्ति-

समान नहीं होती। अधिकांश मनुष्य ३० कम्पन प्रति सेकंडसे कम और ४० सहस्र कम्पन प्रति सेकंडसे अधिक नहीं सुन सकते। यह सीमाओंकी कैद हमारे लिये एकतरहका बरदान है। यदि हम वायुमंडलके सब ऊँचे नीचे कम्पनोंसे प्रभावित हो सकते तो हमारी श्रवणइंद्रिय प्रतिक्षण अशान्त रहती, हमें कभी शान्तिका मुख देखना नसीब न होता।

परन्तु जानवरोंकी श्रवणशक्ति मनुष्योंसे प्रबल होती है। गालटन (Galtan) नामक एक व्यक्तिने एक बार एक ऐसा पपैया बनाया था कि जिसको वह इच्छानुसार ऊँचा और नीचा कर लेता था। उसने उस पपैयेसे चिड़ियाघरमें अनेक जानवरों पर परीक्षा की और वह इस परिणाम पर पहुँचा कि बड़े कुत्तोंकी अपेक्षा छोटे कुत्ते अधिक श्रवण-शक्ति रखते हैं। शेर, चीते आदि बिल्लीकी किस्मके पशु अधिक सुनते हैं और अन्य पशु इनके बराबर नहीं सुन सकते। अमेरिकाके असली निवासी जिनको रेड (लाल) इंडियन कहा जाता है सभ्य मनुष्योंकी अपेक्षा श्रवण करनेमें तेज होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे जान-वरोंको शिकारी जानवरोंसे भय बना रहता है और इनको अपने बचावके लिये श्रवणसे अधिक कार्य्य लेना पड़ता है। इस इंद्रियसे अधिक कार्य्य लेनेके कारण इनकी यह शक्ति बलवान् हो गई है। विद्यार्थी विचार कर बतावें कि क्या हमारी यह व्याख्या ठीक है ? और शेरों और इंडियनोंकी बलवान् श्रवणशक्तिके क्या कारण हैं ? अन्य जानवरों पर भी परीक्षायें करनी चाहिये।

सब मनुष्य किसी न किसी हद तक बहरे होते हैं, कोई अधिक कोई न्यून। यदि तुम अपनी श्रवणशक्तिकी परीक्षा करना चाहो तो निम्न-लिखित परीक्षा करो। एक नितान्त शान्त कमरा हो। वहाँ तुम अपने एक कानको रुईसे अच्छी तरह बन्द कर लो। फिर किसीके द्वारा एक घड़ी

दूरसे कानके निकट मँगवाओ और देखो तुम्हारा कान कितनी दूरी पर घड़ीकी टिक-टिक, सुनना आरम्भ करता है। फिर कानके पाससे घड़ीको हटाते जाओ और देखो कहाँ तक टिक-टिक, सुनते रहते हो और कहाँ पर सुनना बन्द हो जाता है। ऐसा करनेसे एक कानकी श्रवणशक्ति विदित हो जायगी। दूसरे कानकी परीक्षाके समय प्रथम कानको रूईसे बन्द कर दो और फिर यथापूर्व परीक्षा करो।

वृद्ध पुरुषोंमें बहरेपनकी मात्रा अधिक पाई जाती है। जहाँ उनकी अन्य शक्तियाँ निर्बल पड़ने लगती हैं वहाँ श्रवणशक्ति भी बलहीन होने लगती है। ऐसे वृद्ध बहरोंसे वार्त्तालाप करनेमें साधारणतया लोग ऊँचे शब्द प्रयोग करते हैं। परन्तु यह बहुधा देखा गया है कि यदि बात-चीत स्पष्ट भाषामें और मन्द स्वरोंमें की जाय तो वे सरलतापूर्वक समझ लेते हैं। इस पर एक कहावत भी है कि बहरे अपने मतलबकी बहुत जल्दी सुन लेते हैं, वैसे चाहे जितना पुकारो नहीं सुनते। इसका यह कारण है कि बहुत मनुष्योंके कान ऊँचे शब्दोंके वास्ते बहरे हो जाते हैं और जब नीची किन्तु स्पष्ट भाषामें बात कही जाती है तो वे सुन लेते हैं। बहुधा यह भी अनुभव हुआ है कि बहरे मनुष्य ऐसे स्थानमें जहाँ शोर मच रहा हो सरलतया सुन लेते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि शोरके कारण उनकी श्रवण-नाड़ी प्रभावित हो जाती है और उस समय यदि कोई बात कही जाती है तो वह उसको ग्रहण कर लेती है। जैसे एक मनुष्य जो अपना भोजन बना रहा हो दूसरेकी दो रोटी सरलतापूर्वक बना देता है। इसी प्रकार शोरसे प्रभावित इन्द्रिय अन्य शब्द भी सरलतापूर्वक सुन लेती है।

अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि इस शब्दकी क्या श्रेणी है और इस शब्दमें और उस शब्दमें श्रेणीकी क्या विभिन्नता है। यदि इसकी

परीक्षा करनी हो तो सितारके तार मिलवा कर देखो कितने मनुष्य ठीक ठीक मिलाते हैं। यह शब्द-ज्ञान भी एक आवश्यक ज्ञान है और युवा स्त्री-पुरुषोंको गान और वाद्य द्वारा यह ज्ञान अवश्य सीखना चाहिये।

हमारी श्रवण इंद्रियमें एक विचित्रता है कि यह इंद्रिय अनेक भिन्न भिन्न शब्दोंको जो एकसंग निकलते हैं और इस पर प्रभाव करते हैं भिन्न भिन्न समझती है, सबको मिलाकर एक खिचड़ी नहीं बनाती। यथा— एक रंगशालामें सितार, सारंगी, तबला आदि बज रहे हों और नाच-गान भी हो रहा हो तो इन सबके शब्दोंका ज्ञान एक संग हो जायगा कि यह सितार बज रहा है, वह सारंगी और तबला बज रहे हैं। तथा नाच गाना भी हो रहा है। इस इंद्रियमें यह शक्ति है कि वह एक संग आनेवाले अनेक शब्दोंकी विभिन्नता जान लेती है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जब कानमें झिल्ली एक है जहाँ सर्व कम्पन टकराते हैं तो क्या कारण है कि शब्द अलग अलग सुनाई पड़ते हैं और मिलकर एक नहीं होते। इस प्रश्नका उत्तर हेल्महोज (Helmhotwj) ने यह दिया है और यह सामान्य-तया माना भी जाता है कि कानकी झिल्ली या परदा अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न तन्तुओंसे बना है। भिन्न भिन्न तन्तु भिन्न भिन्न प्रकारके शब्दसे प्रभावित होते हैं; सारे तन्तु सर्व प्रभावोंमें नहीं आते। जिस तन्तुका कार्य्य जिस प्रकारके प्रभावसे प्रभावित होता है वह उसी प्रभावमें कार्य्य करता है, अन्यथा नहीं। जब अनेक प्रकारके शब्द एकसंग परदे पर आक्रमण करते हैं, तो विषय-सम्बन्धी तन्तु अपने अपने विषयको ग्रहण कर लेते हैं और भिन्न प्रभावको ग्रहण नहीं करते। जिस रूपमें यह तन्तु प्रभाव लेते हैं उसी रूपमें श्रवण-नाड़ी तक प्रभाव पहुँचा देते हैं, अतः श्रवण-परिणाम भी अलग अलग होता है।

रोचक प्रश्नावली।

(१) हमारे दो कान क्यों होते है ? यदि एक होता तो क्या हानि थी ?

(२) हम शब्द सुनकर यह बता देते हैं कि यह शब्द पूर्व या पश्चिमसे आता है और इननी दूरीसे आ रहा है ? यह क्यों कर होता है ?

(३) यदि हमारी श्रवण शक्ति नष्ट हो जाय, तो हमारे मनकी कितनी और किस प्रकारकी हानि हो ?

(४) क्या पशुओंके समान हमारी शब्द–शक्ति बलवान् थी ? यदि थी तो कब और किस दशामें थी और अब क्यों नही है ?

(५) क्या तुम दोनों कानोंसे समान सुन सकते हो ?

(६) क्या हेल्महोजका सिद्धान्त सत्य है ?

अध्याय चौथा ।

दृष्टि ।

हम स्वाद, घ्राण और शब्दका वर्णन कर चुके हैं। इस अध्यायमें दृष्टि-के विषयमें कुछ लिखेंगे। यह इंद्रिय बहुत आवश्यक है। मनको सामग्री प्रस्तुत करनेमें यह बड़ी सहायक होती है। इसके वास्तविक विषय रंग और प्रकाश हैं। जैसे जिह्वा स्वादको, घ्राण गन्धको और श्रवण शब्दको ग्रहण करते हैं वैसे ही चक्षु रंग और प्रकाशको ग्रहण करते हैं। परन्तु दृष्टि शक्तिमें यह अद्भुत बात है कि यह अन्य इंन्द्रियोंसे मिलकर कार्य्य करने लगती है और बहुधा उनके विषयोंको अपना बना लेती है। सुन्दर सेव यद्यपि चखा नहीं गया किन्तु केवल उसके देखनेसे ही मुखमें जलभर आता है। यद्यपि एक वस्तुको हम स्पर्श नहीं करते किन्तु उसके तलपरकी ऊँचाई निचाई देखकर हमें ज्ञान हो जाता है कि वस्तु खुरदरी है। विशेष ज्ञानके लिये विद्यार्थी स्वयम् परीक्षा करें।

चक्षु इंद्रिय बहुत कोमल और बहुत जटिल वस्तु है। इसकी बनावट फोटो उतारनेके केमेरासे मिलती है या यों कहिये कि फोटो उतारनेका केमेरा (Camera obscura) चक्षुके समान बनाया गया है। जिन मनुष्योंने यह केमेरा देखा होगा वे चक्षुकी बनावट सरलतापूर्वक समझ सकते हैं। जिन विद्यार्थियोंने न देखा हो उनको किसी फोटोग्राफरकी दूकान पर जाकर एक बार केमेरा अवश्य देख लेना चाहिए और विशेष विवरण जाननेके लिये शरीर-विज्ञानका स्वाध्याय करना चाहिये। यहाँ संक्षेपसे वही बातें लिखी जाती हैं जो हमारे वर्त्तमान प्रयोजनके लिये पर्याप्त हों।

चक्षु गोल गेंदके समान बना हुआ है। इस गेंदके मुखपर एक श्वेत परदा लगा है। इस परदेके पीछे एक काँचके टुकड़ेके समान एक वस्तु लगी है जिसको अँगरेजीमें लैंज कहते हैं। इस लैंजके पश्चात् एक परदा लगा है जो मस्तिष्कसे निकलनेवाली दृष्टि-नाड़ीका फैलाव मात्र है। सूरजकी जो किरणें बाहरवाले श्वेत परदे पर पड़ती हैं वे लैंजमेंसे होती हुई भीतरवाले परदेपर पड़ती हैं और दृष्टि-नाड़ी द्वारा उसका प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँच जाता है और संवेदन उत्पन्न करता है। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि दूरस्थ और निकटस्थ वस्तुओंको ग्रहण कर-नेके लिये लैंज स्थान और आकार परिवर्तन करता रहता है।

जहाँ दृष्टि-नाड़ी चक्षु-गेंदसे मिलती है उस स्थानको अन्ध-स्थान कहते हैं। जो किरणें उस स्थान पर पड़ती हैं उनका कोई प्रभाव नहीं होता और न कोई संवेदन उत्पन्न होता है। इस अन्ध-स्थान (Blind spot) के निकट ही एक और स्थान है। इसको पीला स्थान (Yellow spot) कहते हैं। यह पीला स्थान भी किरणें पड़ने पर स्पष्ट दिखाई देता है। इस पीले स्थानके अतिरिक्त परदेपर जो अन्य स्थान हैं उन पर किरणें पड़नेसे स्पष्ट दिखाई नहीं देता, किन्तु कम दृष्टि आता है।

जैसे कर्णेन्द्रिय वायुकम्पनोंसे प्रभावित होती है वैसे ही चक्षु-इन्द्रिय भी वायुकम्पनोंसे प्रभावित होती है। केवल भेद इतना है कि शब्द-इंद्रिय प्रति सेकंड १२ से ६० सहस्र वायु-कम्पन तक ही ग्रहण कर सकती है और इस सीमासे परे इसका विषय नहीं रहता। चक्षु-इंद्रियका विषय चार खरब साठ अरब वायुकम्पन प्रति सेकंडसे प्रारम्भ होकर सात खरब तीस अरब प्रति सेकंड पर अन्त होता है। चार खरब साठ अरब वायु-कम्पन प्रति सेकंड पर लाल रंगका संवेदन आरम्भ होता है और सात खरब तीस अरब पर नीले रंगका संवे-

दन समाप्त हो जाता है। निचली सीमासे पूर्व चक्षु इंद्रिय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और ऊँची सीमासे परे अँधेरेके अतिरिक्त कुछ दृष्टि नहीं आता। इन दोनों सीमाओंके अन्तर्गत प्रत्येक परिवर्तनका प्रभाव चक्षुपर पड़ता है और हम अनेक प्रकारके रंग देखते हैं।

दृष्टि—नाड़ी (Optic nerve) बिना बाह्य उत्तेजकके आन्तरिक उत्तेजकसे भी उत्तेजित हो जाती है और तारेसे टूटते दिखाई देने लगते हैं। जब कभी मस्तिष्क पर चोट लगनेसे दृष्टि-नाड़ी उत्तेजित हो जाती है तो इस उत्तेजनाका प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचता है और मन उस प्रभावका अनुवाद यथापूर्व करता है और प्रकाश और रंगका संवेदन हो जाता है। इंद्रिय और उसकी नाड़ीका कार्य्य उत्तेजक पदार्थके प्रभावको मस्तिष्क तक पहुँचा देना होता है और उस प्रभावसे मनमें संवेदन उत्पन्न होता है। जैसे तारका कार्य्य विद्युत्-प्रवाहको निश्चित स्थान तक ले जाना और तार—बाबूका कार्य्य उस प्रभावको समझना है, इसी प्रकार इंद्रिय और नाड़ीका कार्य्य उत्तेजक—प्रभावको ले जाना और मस्तिष्कका कार्य्य उस प्रभावको समझना है।

यदि हम काली जमीन पर श्वेत वस्तुको लगातार बहुत समय तक देखते रहें और फिर किसी श्वेत जमीनकी तरफ दृष्टि हटा लें तो कुछ समय तक मटियालासा दृष्टि आयेगा। ऐसे ही यदि हम लाल वस्तुको देखते रहें और श्वेत वस्तुकी तरफ फिर दृष्टि फेर लें, तो हरियाली लिये हुए नीला दिखाई देगा। सामान्यतया हरेके पश्चात् गुलाबी और पीलेके पश्चात् नीला दिखाई देगा। इसको विरुद्ध-पश्चात्-दृष्टि (Negative after-image) कहते हैं। श्वेत और काला, हरा और लाल, नीला और पीला परस्पर एक दूसरेके पूरक हैं। बहुत समय तक एक रंग पर दृष्टि जमानेसे उस रंगके प्रभावके कारण दृष्टि-शक्ति कुछ

थक जाती है और जब हम श्वेत या काले रंगकी तरफ अपनी आँखें करते हैं तो उस रंगके स्थानमें उसका पूरक नजर आता है। जिस रंगके कारण दृष्टि थक जाती है श्वेतमेंसे उस रंगको ग्रहण नहीं करती, अतः उसका पूरक रंग दिखता है। क्योंकि श्वेतमें सब रंग पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, सूर्य्यके प्रकाशको त्रिकोण काँचके टुकड़ेमेंसे देख सकते हो कि श्वेत प्रकाश रंग-बिरंगा दिखाई देता है। विद्वान् इन रंगोंकी संख्या सात बताते हैं जो लालसे प्रारम्भ होकर नीलेपर अन्त हो जाती है।

तुमने कई समय अनुभव किया होगा कि आतिशबाजी छुड़ानेवाले एक चरखी लेते हैं और उसमें दो या चार स्थानपर अग्नि लगा देते हैं। परन्तु जिस समय वह चरखी घूमती है तो उन दो या चार स्थानोंके बदले एक पूर्ण वृत्त या चक्कर प्रतीत होता है। इसको अनुकूल-पश्चात्-दृष्टि (Positive after-image) कहते हैं। इसका कारण यह है कि अन्तार्स्थित परदेपर जो उत्तेजनायें पड़ती हैं उनका प्रभाव उत्तेजकके दूर हो जानेपर भी कुछ समयपर्यन्त बना रहता है। चरखी इतनी शीघ्रतासे घूमती है कि एक उत्तेजकका प्रभाव अन्त होने नहीं पाता कि दूसरा उत्तेजक आ उपास्थित होता है और मनको दो या चार स्थानोंकी अपेक्षा एक पूर्ण वृत्त प्रतीत होता है।

जब हम प्रकाशमेंसे अन्धेरी कोठरीमें जाते हैं तो एकदम अन्धेरा प्रतीत होता है। कुछ समयके पश्चात कुछ कुछ दिखाई देने लगता है और हम उस स्थानकी वस्तु पहिचानने लगते हैं, अर्थात् पहले जितना अन्धेरा अब नहीं रहता। ऐसे ही जब हम अन्धेरेसे प्रकाशमें आते हैं तो आँखें चोंधिया जाती हैं और उन्हें कुछ समयके पश्चात् खोल सकते हैं। इसको स्थितिअनुकूलता (Adaptation) कहते हैं। इसका कारण

यही है कि इंद्रिय स्थिति अनुसार हो जाती है और जब वह स्थिति परिवर्तित होती है तो पूर्व स्थितिके प्रभावको दूर करनेमें कुछ समयकी आवश्यकता होती है।

रंग अनेक होते हैं, परन्तु लालसे नीले तक मुख्य सात प्रकार हैं। इन सात रंगोंके मेलसे श्वेत बनता है। यह हम प्रथम ही बता आये हैं कि सूर्य्यके प्रकाशमें भी यही सात रंग दिखाई देते हैं और इन रंगोंको अलग अलग देखनेके लिये एक त्रिकोण काँचके टुकड़ेकी आवश्यकता है। इस प्रकार देखनेसे रंग सात दिखाई देंगे परन्तु परीक्षा करनेसे विदित हो गया है कि मुख्य रंग तीन हैं—लाल, हरा और नीला। इन तीनोंके मिलानेसे श्वेत प्रकाश दिखने लगता है। चित्रकारोंका इसमें कुछ मत-भेद है। वे कहते हैं कि मुख्य रंग लाल, हरा और नीला हैं। इन तीन रंगोंको मिलानेसे प्रत्येक रंग बन जाता है। वास्तवमें लाल, हरा और नीला ही मुख्य रंग हैं, और लाल, पीला और नीला मुख्य नहीं। ये केवल चित्रकारीहीमें प्रयोग दे सकते हैं। विशेष परीक्षा विद्यार्थी स्वयं करें।

कुछ मनुष्य एक विशेष रंगके लिये अन्धे होते हैं। यथा कई मनुष्य लाल नहीं देख सकते, दूसरे व्यक्ति हरा नहीं देख सकते और कोई कोई नीला नहीं अनुभव कर सकते। जो व्यक्ति लाल-अन्धे होते हैं वे लालको हरा समझते हैं, और जो हरे-अन्धे होते हैं वे हरी वस्तुको लाल समझते हैं। यदि उस पुरुषके सम्मुख जो लालका अनुभव नहीं कर सकता, लाल और हरी दो झंडियाँ लाई जायँ तो वह दोनोंको हरी देखेगा और इसी प्रकार हरा अन्धा दोनों झंडियोंको लाल खयाल करेगा। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि हरा लालका और लाल हरेका पूरक है। इसी कारण हरा-अन्धा हरेको लाल और लाल-अन्धा लालको हरा देखता है। कुछ मनुष्य नीला नहीं देख सकते और कुछ सब रंगोंके लिये अन्धे

होते हैं; इनको कोई रंग दृष्टि नहीं आता, सब पदार्थ श्वेत या काले नजर पड़ते हैं । यह एक अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है । ऐसे अन्धोंको रेल और जहाज पर नौकरी नहीं करनी चाहिये । यहाँ रंगोंपर ही सर्वसाधारणका जीवन निर्भर होता है । यहाँ लालसे अभिप्राय भयका और हरेसे निर्भयका होता है ।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि श्वेत लाल, हरा और नीला इन तीन रंगोंके मेलसे, बनता है तो क्या कारण है कि जो व्यक्ति हरा, लाल, या नीला नहीं देख सकता वह श्वेत देखता रहता है । इसका समाधान हेरिंग (Hering) ने किया है कि अन्तर्स्थित परदा जिसको अँगरेजीमें रेटीना (Retina) कहते हैं तीन भागोंमें विभक्त है । एक भाग लाल और हरेसे, दूसरा भाग पीले और नीलेसे, और तीसरा भाग श्वेत और कालेसे प्रभावित होता है । अतः लाल, हरा या नीला न देखता हुआ भी एक व्यक्ति श्वेत देख सकता है । और यही कारण है कि लाल-अन्धा लालको हरा देखता है, पीला या नीला नहीं । लाल हरे उत्तेजकसे उत्तेजित होनेवाला भाग जिस समय लाल-अन्धा या हरा-अन्धा होता है तो लाल या हरे उत्तेजकका प्रभाव समान ग्रहण करता है और लालको हरा या हरेको लाल देखता है ।

लैंजसे होकर जो किरण रेटीना परदेपर पड़ती है वह उल्टी पड़ती है । यथा एक मनुष्यका चित्र रेटीनापर उल्टा पड़ेगा, अर्थात् मनुष्यका सिर नीचे और पग ऊपर । परन्तु इस उलट-फेरके होते हुए भी हम सीधा देखते हैं, अर्थात् सिर ऊपर और पैर नीचे । विद्यार्थी बतावें, इसका क्या कारण है कि हम क्यों उलटा नहीं देखते ।

वस्तुओंके तीन तल (Three dimensions) होते हैं—लम्बाई,

चौड़ाई और मोटाई । हमारे दो चक्षु होते हैं। कुछ मनो-विज्ञान-वेत्ताओंकी सम्मति है कि यदि हमारे दो चक्षु न होते तो हमको तीन तलका ज्ञान नहीं होता। एक चक्षु केवल दो तल–लम्बाई और चौड़ाई–का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। सभी वस्तुयें चित्रवत् लम्बाई और चौड़ाईमें दृष्टि आतीं और हमको मोटाईका ज्ञान कभी न होता। दो चक्षु एक ही वस्तुका दुहरा चित्र लेते हैं और यह चित्र दो अलग अलग स्थानोंसे लिये जाते हैं, अतः चित्रोंमें कुछ विभिन्नता होती है। जिस समय दोनों चित्र मन पर एकसंग प्रभाव करते हैं तब वस्तुकी मोटाईका ज्ञान हो जाता है। इसमें शेरबीनका उदाहरण दिया जाता है। जिस प्रकार शेरबीनमें एक ही वस्तुके दो चित्र देखें-जिनमें कुछ थोड़ासा भेद होता है तो एक वास्तविक वस्तु तीनों तलोंमें नजर आती है, उसी प्रकार मनमें दोनों चक्षुओंद्वारा चित्रित वस्तु तीनों तलों अर्थात् लम्बाई, चौडाई और मोटाईमें अनुभव होती है। अन्य पंडितोंका मत है कि एक चक्षुसे यह ज्ञान यद्यपि कुछ कम होता है किन्तु होता अवश्य है। प्रो० बुअल (Buell) लिखते हैं कि मैंने एक ऐसा व्यक्ति देखा जिसकी एक आँख शिशु अवस्थाहीमें जाती रही थी, परन्तु वह मनुष्य मोटाईका भी ज्ञान चक्षुसे प्राप्त करता था और दूरीका भी।

अन्य विद्वानोंका मत है कि मोटाईका ज्ञान चक्षुका विषय नहीं किन्तु स्पर्शका है। चक्षु सम्मुख-वस्तुकी लम्बाई और चौड़ाई जान सकते हैं। एक वस्तुको स्पर्श किये बिना उसकी मोटाईका ज्ञान नहीं आता। यह दूसरी बात है कि अभ्यास करते करते चक्षुको मोटाईका अनुमान होने लग जाता है। किन्तु वास्तवमें मोटाई जानना स्पर्शका कार्य्य है, चक्षुका नही। जो ऐसा कहते हैं कि मोटाई जानना स्पर्शका विषय है, वे यह समझते हैं कि चक्षु मूर्तिवत् स्थिर इंद्रिय है, वे इस बातपर ध्यान नहीं देते कि यह इन्द्रिय गतिशील है, स्थिर नहीं। यह चंचल है। यह

एक पदार्थको ऊपर नीचे बराबर सब दिशाओंसे देख सकती है। तीसरी तलके ज्ञानके लिये स्पर्श-प्रभावको कम किये बिना, हम यह कह सकते हैं कि चक्षुको भी मोटाईका बोध हो सकता है और होता है।

यदि तुमने फोटोके चित्रको देखा होगा तो तुम्हें ज्ञात होगा कि चित्रका मध्य स्थान उज्ज्वल और स्पष्ट होता है और आसपासके स्थान न्यून स्पष्ट और उज्ज्वल होते हैं और किनारोंके स्थान मन्दे होते चले जाते हैं। यही दशा आँखमें चित्रकी होती है। रेटीनाके परदेपर जितनी किरणें पड़ती हैं वे सब समान स्पष्ट नहीं होती। जो किरणें पीलेस्थानपर पड़ती हैं वे सबसे स्पष्ट चित्र बनाती हैं, जो अन्य स्थानोंपर पड़ती हैं वे मन्दे चित्र उत्पन्न करती हैं और जो किनारोंपर पड़ती हैं वे बहुत अस्पष्ट होती हैं और जो किरणें अन्धे-स्थानपर पड़ती हैं वे कोई चित्र नहीं बनातीं।

यदि हम एक आँख बन्द कर लें और दूसरीको एक शब्द या वस्तु पर जमा दें तो शब्द या वस्तुके सिवा अन्य वस्तुयें भी जो आसपास हैं दिखाई देती रहेंगी; परन्तु ऐसी स्पष्ट नहीं जैसा कि शब्द या वस्तु जिस पर दृष्टि जमा रक्खी है। एक वस्तुपर दृष्टि रखते हुए जितनी दूरीकी वस्तुयें अनायास ही दृष्टि आती रहती हैं उस क्षेत्रको दृष्टिक्षेत्र (Field of vision) कहते हैं। इस दृष्टिक्षेत्रका सामान्य माप यह है—ऊपरकी तरफ ७०° अंश, नीचेकी तरफ ८०° अंश, अन्दरकी तरफ ७५° अंश, और बाहरकी तरफ ८५° अंश। विद्यार्थी अपने अपने दृष्टि-क्षेत्र मालूम करें।

हम यह बता चुके हैं कि जिस स्थान पर दृष्टि-नाड़ी रेटीना परदेसे या आँखकी गेंदसे मिलती है उस स्थानको अन्धा-स्थान कहते हैं और उस अन्धे स्थान पर किरण पड़नेसे कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। परन्तु यह अन्धा स्थान हमको ज्ञात नहीं होता। हम वस्तुयें भले प्रकार देखते हैं इसका क्या कारण है? हमारे चक्षु

लगातार गति करते रहते हैं, कभी स्थिर नहीं रहते। पूर्व इसके कि कोई किरण अन्धे स्थानपर पड़े, चक्षुका स्थान परिवर्तित हो जाता है और अन्धे स्थानको प्रभाव ज्ञात नहीं होता। यदि हम दो इंचकी दूरी पर दो बिन्दु बनावें और एक आँख बंद करके बन्द आँखके सम्मुखवाले बिन्दुपर अपनी दृष्टि जमावें तो दूसरा बिन्दु भी दिखता रहेगा। किन्तु धीरे धीरे कागजको आँखकी तरफ लावें तो एक स्थान ऐसा आवेगा जहाँ वह बिन्दु जो खुली हुई आँखके सम्मुख है लोप हो जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि अब उस बिन्दुकी किरणें अन्धे स्थान पर पड़ रहीं हैं और इसी लिये वह दृष्टिमें नहीं आता।

जैसे फोटोग्राफर फोकस लेनेके लिये प्लेटको आगे पीछे करता है वैसे ही आँखमें लैंज भी आगे पीछे होता रहता है। यदि लैंज एक ही स्थानपर स्थिर रहे तो दूरस्थ और निकटस्थ वस्तुओंका प्रभाव पीले स्थानपर नहीं पड़ सकता। वस्तुओंकी दूरीके अनुकूल लैंजको आगे पीछे होना पड़ता है, इस लिये कि वस्तुओंका चित्र पीले स्थानपर ठीक ठीक पड़ सके।

अब हम प्रकाशके संवेदन द्वारपर आते हैं। यह भली प्रकार ज्ञात है कि अन्धेरा क्या है। जब वायु-कम्पन अपर्याप्त हो तो रेटीना प्रभावित नहीं होता और यही अन्धेरा है। परन्तु भिन्न भिन्न पशुओंके चक्षु भिन्न भिन्न वायु कम्पनोंसे प्रभावित होते हैं। बिल्ली अन्धेरेमें देख लेती है किन्तु मनुष्य नहीं देख सकता। जिसको हम अन्धेरा समझते हैं वह उस पशुके वास्ते प्रकाश है और जिसको हम प्रकाश कहते हैं उल्लू उसको न मालूम क्या बला समझता होगा। यह पक्षी रात्रिमें ही देख सकता है, दिनमें नहीं। मनुष्यदृष्टिका प्रकाशसंवेदनद्वार यह है कि पूर्णचन्द्र चान्द्रिका-को एक श्वेत कागजपर डालो और तब जो चमक उस श्वेत कागजसे निकले समझो कि उसके $\frac{१}{३००}$ वें भागतक मनुष्य देख लेता है। मनुष्यचक्षु रंगोंके

भेद $\frac{1}{100}$ वें भागतक जान लेता है। यथा यदि हम एक सेर जलमें १०० रत्ती लाल रंग मिलावें और दीवार पर पोत दें और दूसरी दीवार पर एक सेर जलमें १०१ रत्ती लाल रंग मिलाकर पोत दें तो दोनों दीवारोंके रंगोंका भेद विदित हो जायगा। पहली दीवारका रंग फीका और दूसरीका कुछ तेज दृष्टि आयगा।

मनुष्योंको दृष्टि-भ्रम बहुधा हो जाता है। एक सीधी लकड़ी जलमें टेढ़ी प्रतीत होती है। जेष्ठकी तपनमें बालूकी भूमिको जलाशय समझकर बेचारा मृग भटकता फिरता है। रात्रिमें एक डरपोक व्यक्ति बोझेको भूत समझता है। बड़े वृक्षके संग छोटा वृक्ष अधिक छोटा दिखता है। सुन्दर पुरुषके संग कुरूप व्यक्ति अधिक कुरूप विदित होता है। चावल बेचनेवाले चावल काले कम्बल पर दिखाया करते हैं जिससे कि खराब माल भी अच्छा दिखने लगता है। एक समय हम स्वयम् इस भ्रममें पड़कर धोखा खा चुके हैं। एक भरा हुआ स्थान बड़ा और एक खाली स्थान छोटा मालूम पड़ता है। ऊपरकी वस्तु बड़ी और नीचेकी छोटी दृष्टि आती है। यह भ्रमका विषय अत्यन्त रोचक और लाभदायक है। भ्रमके ज्ञानसे व्यापारमें बहुत लाभ हो सकता है। परन्तु इस लघु पुस्तिकामें विशेष नहीं लिखा जा सकता। यदि समय मिला तो इस विषयपर चित्रोंसहित एक अलग पुस्तक लिखी जायगी। यहाँ इतना बता देना पर्याप्त है कि भ्रम उत्पन्न होनेमें न दृष्टि-दोष होता है और न उत्तेजक दोषित होता है। इसमें दोष सम्बन्ध-नियमका बहुधा हुआ करता है जिस नियमका वर्णन आगे स्मृतिके वर्णनमें दिया जायगा।

एक भ्रम ऐसा होता है जिसमें बाह्य उत्तेजक कोई नहीं होता। रोगी प्रायः कभी कुछ देखते हैं कभी कुछ; परन्तु देखनेके लिये वहाँ वह वस्तु नहीं होती। पागल सर्वदा भ्रममें पड़े रहते हैं और अद्भुत अद्भुत वस्तुयें देखा करते हैं। यह स्वयम् मस्तिष्कके उत्तेजित हो जानेसे हो जाता है।

रोचक प्रश्नावली ।

(१) दृष्टिसे किन बातोंका ज्ञान वास्तविकतया होता है ?

(२) मनको सामग्री जुटानेमें दृष्टिका कौन स्थान है ?

(३) हमारे दो आँखें होते हुए भी हम एक वस्तुको दो नहीं देखते । क्यों ?

(४) कुछ नवीन भ्रम लिखो जिनका तुमको अनुभव हुआ हो ।

(५) जो मनुष्य वर्षों काल-कोठरीमें बन्द रहते हैं वे सहसा बाहर आना नहीं चाहते, क्यो ?

(६) व्यापारमे भ्रमसे कैसे लाभ उठाया जाता है ?

(७) किसी जन्मके अन्धेके पास जाओ और उसके ज्ञानकी जाँच करो कि उसको किस किस वस्तुका ज्ञान है और किस किसका नहीं ?

अध्याय पाँचवाँ।

स्पर्श।

हम स्वाद, घ्राण, श्रवण और दृष्टिका वर्णन लिख आये हैं। ये चारों इंद्रियाँ स्थानीय हैं। यह एक एक विशेष स्थानपर स्थित हैं और स्वविषयको उसी स्थानसे ग्रहण करती हैं। परन्तु स्पर्श इन्द्रिय एक स्थानीय नहीं। यह इन्द्रिय सारे शरीरपर फैली हुई है। ज्ञानतन्तु सारे शरीरके चर्म पर फैले हुए हैं और बाह्य प्रभावको ग्रहण करते हैं। इसको स्पर्शसंवेदन कहते हैं। इस स्पर्शसंवेदनमें चार प्रकारके संवेदन सम्मिलित हैं—छूना, दबाव, शीतोष्ण, और मांसपेशियोंका संवेदन।

शरीरके सारे भाग समान स्पर्शशक्तिवाले नहीं होते। किसी भागकी स्पर्शशक्ति अधिक होती है और किसीकी कम। एक परकार लो और उसके दो फलोंको एक संग जिह्वाके अग्र भाग, अंगुलीकी नोक, हथेली, हाथकी पिछली तरफ, माथे, पीठ और गर्दन पर रक्खो और देखो कितनी कितनी दूरी पर इन भागोंसे परकारके दो फलोंका संवेदन प्रतीत होता है। रसनाकी नोक, गाल और अधरमें स्पर्श-शक्ति अधिक होती है और पीठमें बहुत कम। और भागोंकी परीक्षा स्वयम् विद्यार्थी करें। यह परीक्षा बड़ी सरल है। एक व्यक्तिकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसके शरीरके भिन्न भिन्न विभागोंपर परकारकी दोनों नोकें स्पर्श करो और आवश्यकतानुसार दोनों नोकोंकी दूरी न्यूनाधिक करते जाओ। परिणाम लिखते जाओ कि किस किस स्थान पर कितनी दूरीपर दो नोकोंका ज्ञान ठीक होता है। यह परीक्षा कई व्यक्तियों पर करके परिणाम पर पहुँचना चाहिये। जितने अधिक मनुष्यों पर परीक्षा होगी परिणाम उतना ही अधिक ठीक होगा।

जैसे एक मनुष्यके सारे शरीरांग समान शक्तिवाले नहीं होते वैसे ही सारे मनुष्य भी समान स्पर्शशक्तिवाले नहीं होते। बहुत मनुष्य भारको उठानेसे बता देते हैं कि यह इतना है। कुछ व्यक्तियों पर शीतोष्णताका प्रभाव अधिक पड़ता है। अन्धे छूकर ही वस्तु बता देते हैं कि यह अमुक पदार्थ है, वह अमुक व्यक्ति है। अन्धोंको दृष्टिका अभाव अन्य इंद्रियों द्वारा पूरा करना पड़ता है। प्रत्येक इन्द्रियको खोई हुई दृष्टिकी कमीको पूरा करना पड़ता है। स्पर्श और श्रवण इंद्रियाँ विशेषकर बढ़ जाती हैं। यह समझना नहीं चाहिये कि अन्धोंकी स्पर्श और शब्दशक्तियॉ नैसर्गिक ही बढ़ी हुई होती हैं। अन्धोंको बाह्य संसारसे व्यवहार करनेकी आवश्यकता पड़ती है। जो कार्य्य अन्य दृष्टिवाले मनुष्य दृष्टिसे ले लेते हैं इन गरीबोंको वह कार्य्य अन्य इंद्रियों द्वारा लेना पड़ता है। मनुष्योंको पहिचाननेके लिये श्रवणका प्रयोग और वस्तुभेदके लिये स्पर्शका प्रयोग करना पड़ता है, इसी कारण अन्धोंकी ये शक्तियाँ तेज हो जाती हैं। यहॉ यह एक रोचक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या अन्धोंके समान स्पर्श और श्रवण शक्तियॉ हम भी बढ़ा सकते हैं और इनका बढ़ाना क्या हमारे लिये लाभकारी होगा।

शरीरके किसी भागसे जब ज्ञानतन्तु अपना प्रभाव मास्तिष्कको ले जाते हैं तो मन उस स्थानका पता जिससे वह प्रभाव आया है बहुत कुछ ठीक ठीक लगा लेता है। इसको संवेदनका स्थानीय करण (Localization of sensation) कहते हैं। यदि मेरे किसी अंग पर सुई चुभोई जाय तो मन जान जाता है कि यह दुःख हाथमें, पैरमें या अन्य स्थानमें हो रहा है। आँखें बन्द होने पर भी मन बता देता है कि हाथ किस वस्तुसे छू रहा है या पैर किस पदार्थसे स्पर्श हो रहा है। यह बहुधा अनुभव हुआ है कि जिन पुरुषोंका कोई अंग कट गया है वह व्यक्ति उस कटे हुए अवयवमें बहुधा दर्द अनुभव करते हैं। इसका कारण भी संवेदनका

स्थानीय करण है । कटे हुए ज्ञानतन्तु जो कटे हुए अंगमें पहले जाते थे, वहाँसे प्रभाव लाते थे और मनको पहुँचाते थे वे किसी कारणसे उत्तेजित हो जाते हैं और मनतक प्रभाव ले जाते हैं । मन पूर्व अभ्यासानुसार उस संवेदनका स्थान उसी कटे हुए अवयवको समझता है, अतः मनुष्य अपने कटे हुए हाथ या पैरमें बहुधा दर्द अनुभव किया करते हैं । परन्तु जब कभी मास्तिष्क अस्वस्थ होता है या चक्कर खाया हुआ होता है उस समय स्थानीय करणमें गलती भी हो जाती है ।

स्पर्शपर गतिका प्रभाव बहुत पड़ता है, अर्थात् किसी वस्तुको छूनेके समय गतिका प्रयोग भी किया जाय तो परिणाम अधिक ठीक होगा । किसी वस्तुपर हाथ रक्खो तो तुमको कोई खुरदरापन प्रतीत नहीं होगा परन्तु यदि उस वस्तुपर हाथ धीरे धीरे फेरो तो मालूम हो जायगा कि कहाँसे चिकनी और कहाँसे खुरदरी है । केवल हाथ रखनेसे एक वस्तुका वास्तविक रूप विदित नहीं होता । जब हाथ उसपर फेरा जाता है तो ज्ञात हो जाता है कि वस्तुकी असलीयत क्या है । चिकनाहट और खुरदरेपनको जाननेके लिये स्पर्शके संग गतिकी आवश्यकता है ।

तुमने कई बार देखा होगा कि स्कूलके लड़कों और पुलिसके सिपाहियोंको कवायद् सिखाई जाती है । एक मास्टर या अफसर खड़ा हो जाता है और कुछ शब्द् कहता जाता है । सब लड़के या सिपाही उसके शब्दपर एक संग भागते, कूद्ते, बैठते, उठते और बन्दूक चलाते हैं । क्या तुमने कभी सोचा है कि यह अभ्यास क्यों कराया जाता है ? इससे क्या लाभ है ? ऐसा अभ्यास करानेका क्या कारण है ?

इसका कारण यह है कि सर्व व्यक्तियोंमें प्रति-कार्य (Reaction) करनेका समय समान नहीं होता । यदि एक मनुष्यकी अंगुलीपर सुई चुभोई जाय तो ज्ञानतन्तुओं द्वारा वह प्रभाव मनतक पहुँचेगा और

मनसे अंगुली दूर कर लेनेकी आज्ञा कार्य्य-कारी तन्तुओंद्वारा आयगी तब अंगुली सुईसे हटेगी। इस प्रक्रियामें कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। इसको प्रति-कार्यका समय (Reaction time) कहते हैं। भिन्न भिन्न व्यक्ति प्रतिकार्य करनेमें भिन्न भिन्न समय लेते हैं। सबकी प्रतिकार्य-शक्ति समान नहीं होती। इस प्रति-कार्यशक्तिको समान बनानेके लिये कवायद् कराई जाती है। प्रति-कार्यकी शक्ति जहाँ भिन्न भिन्न मनुष्योंमें अलग अलग होती है वहाँ भिन्न भिन्न इंद्रियोंमें भी अलग अलग होती है। अर्थात् सब इंद्रियोंसे जो प्रभाव मनको पहुँचते हैं उन सबका प्रतिकार्य समान समयमें नहीं होता, किसी इंद्रियका अधिक और किसीका कम।

एक व्यक्तिका या एक समूहका प्रतिकार्य-समय ज्ञात करनेके लिये सूक्ष्म और बहु-मूल्य यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। प्रो० कूअलने तीस लड़कोंकी एक कतार खडी की और एक लड़केका हाथ दूसरेकी गर्दन पर रखवाया और यह आज्ञा दी कि जैसे ही तुम्हारी गर्दन पर पहले लड़केके हाथका दबाव अनुभव हो अगले लड़केकी गर्दन पर फौरन दबाव दो। इस प्रकार इस उत्तेजकको तीस लड़कोंतक पहुँचने में १० सेकंड लगते हैं। विद्यार्थी स्वयम् परीक्षा करें, परन्तु व्यक्तिगत विभिन्नताओंका विचार अवश्य रक्खें। घड़ी आदि यन्त्रोंका प्रयोग सावधानता-पूर्वक करें, अन्यथा परिणाम सत्य नहीं होगा।

सर्वसाधारणको प्रतिकार्य-समयका लाभ कुछ प्रतीत नहीं होगा, परंतु वैज्ञानिक संसार इसकी आवश्यकतासे भलीभाँति परिचित हो गया है। विशेषकर ज्योतिषियोंको इससे बहुत काम पड़ता है। किस समय किस स्थानसे अमुक तारा गया, इस विषय पर बडे बड़े गणितज्ञोंका मत-भेद हो जाता है। ऐसे ऐसे यंत्र बन गये हैं जो एक सेकंडका ५०० वाँ

भाग तक बता देते हैं, परंतु इतना न्यून समय भी जब लम्बे लम्बे गुणा भागोंमें जाता है तो बड़ी बड़ी गलतियोंका कारण बन जाता है। न तारेके जानेके समय दो हो सकते हैं और न यन्त्र गलती कर सकता है। परन्तु गणितज्ञोंके प्रतिकार्य-समय भिन्न भिन्न होते हैं और गलती यहीं होतीहै। यदि मतभेद रखनेवाले गणितज्ञोंके प्रति-कार्य समयोंकी जाँच की जाय तो बहुत कुछ गलती दूर हो सकती है। विद्यार्थी विचारें कि इस ज्ञानसे कहाँ कहाँ लाभ उठाया जा सकता है।

यह स्वादके वर्णनमें लिख चुके हैं कि यदि दबावके संवेदनमें परिवर्तन करना अभीष्ट हो तो भारका एक तिहाई भार घटाना या बढ़ाना होगा।

स्पर्श पर ठहर ठहर कर पड़नेवाले दबाव और शीतोष्णका प्रभाव भी पड़ता है। यदि हम एक हाथकी अँगुली दूसरे हाथ पर अत्यंत धीरे धीरे रखते जाय तो एक मक्खीसी चलती प्रतीत होगी। और यदि तीन लोहेके टुकड़े समान भारके लिये जाय एक टुकड़ेको बरफसे ठंडा और दूसरेको अग्निसे गरम कर लिया जाय परन्तु तीसरेको साधारण दशामें रहने दिया जाय और फिर वारी वारीसे एक एक उठाया जाय तो भारमें भेद प्रतीत होगा। ठंडा और गरम भारी मालूम होंगे और तीसरा हलका। मन ठंड और गरमीके संवेदनोंको भारहीमें सम्मिलित कर लेगा और दोनों टुकड़े—गरम और ठंडा—तीसरे साधारण टुकड़ेसे भारी जान पड़ेंगे।

मानवी शरीरके ढकनेके लिये चरम या त्वचा एक अद्भुत वस्त्र है। इसमें चार प्रकारके संवेदन पाये जाते हैं। चारों संवेदनोंके लिये चार प्रकारके बिंदुवत स्थान, एक दूसरेसे भिन्न हैं। स्पर्श-स्थान, शीत-स्थान, उष्ण-स्थान, और दुःख-स्थान केवल स्वविषयको ही ग्रहण करते हैं। यह नहीं होता कि स्पर्श-स्थान शीत प्रतीत

करने लग जायँ, या शीत-स्थान उष्णता अनुभव करने लगें। जो विषय जिन स्थानोंका होता है वह स्थान उसी विषयको ग्रहण करता है। चारों प्रकारके यह बिंदुवत् स्थान सारे त्वचा पर फैले हुए हैं और परस्पर एक दूसरेके संग संग फैले हुए हैं। उदाहरणके लिये हथेलीको लो। हथेलीमें स्पर्श, शीत, उष्ण और दुःख चारों प्रकारके स्थान पाये जाते हैं और परस्पर ऐसे मिले हुए हें कि ढूँढ़ना सरल नहीं।

शीतोष्णका स्पर्शसे इतना संबंध है कि यह स्पर्शके प्रकार समझे जाते हैं। शीत और उष्ण दो भिन्न भिन्न वस्तु नहीं हैं। प्राचीन विद्वान् इनको दो भिन्न भिन्न पदार्थ समझते थे, परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि शीत और उष्ण दो सापेक्ष (Relation) शब्द हैं। यदि शरीरके परमाणुकम्पनसे किसी वस्तुका परमाणुकम्पन शीघ्र होता है तो वह शरीरको उष्ण प्रतीत होती है और यदि शरीरके परमाणुकम्पनसे किसी वस्तुका परमाणु-कम्पन मंद अर्थात् कम होता है तो वह शीतल विदित होती है। शरीरके सामान्य परमाणुकम्पनोंके संबंधसे एक वस्तु शीतल या उष्ण कही जाती है। यदि एक मनुष्य यह कहता है कि अमुक वस्तु शीतल है तो इसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि उस वस्तुके परमाणुकम्पन उस मनुष्यके शरीरके परमाणु कम्पनोंसे धीरे धीरे होते हैं और इसीका नाम शीतलता है। शीतलता कोई भिन्न पदार्थ नहीं जैसा कि प्राचीनोंका मत था।

शरद् ऋतुमें हमारे कानों और हाथोंको ठंड अधिक लगती है और इन अंगोंको ढकनेकी आवश्यकता होती है। परन्तु गालोंको शीत नहीं सताता। हम खुले मुख शीतल वायुमें चले जाते हैं परन्तु गालोंको कोई ठंड नहीं प्रतीत होती। इससे यह जाना जाता है कि उष्णता और शीत अनुभव करनेवाले स्थान अलग अलग हैं। परन्तु जैसी दशा कानों और गालोंकी है वैसी दशा सर्व शरीरके अंगोंकी नहीं। कानोंमें शीत-स्थानों

और गालोंमें उष्ण-स्थानोंकी विशेष अधिकता पाई जाती है किन्तु अन्य अवयवोंमें शीत और उष्ण स्थान परस्पर मिले हुए हैं और अलग अलग नहीं । यदि यह परीक्षा करनी अभीष्ट हो कि उष्ण-स्थान कहाँ कहाँ हैं और शीत-स्थान कहाँ कहाँ, तो पैरिस प्लास्टरको जलके साथ गारासा बनाओ और उसके ऊपर हथेलीका इतना दबाव दो कि हथेलीका सारा चित्र अच्छीतरह गारा पर उतर आवे । फिर एक सुरमेकी पेंसिल तपा कर हथेलीके भिन्न भिन्न स्थानों पर लगाओ । जहाँ जहाँ पेंसिल गरम ज्ञात हो गाराके चित्रमें वह वह स्थान निर्देश करते जाओ । इसी प्रकार पेंसिलको बरफसे ठंडी करके परीक्षा करो और शीत-स्थानोंको भी गारा पर दूसरे रंगकी पेंसिलसे निर्देश करते जाओ । ऐसे हथेलीके शीत और उष्ण स्थानोंका मानचित्र बन जावेगा । यह हम प्रथम ही बता आये हैं कि शीत-स्थान केवल शीतलताको और उष्ण-स्थान केवल उष्णताका अनुभव करते हैं और अन्य स्थानके विषयको ग्रहण नहीं करते । यदि उष्ण पेंसिल शीत-स्थान पर लगाई जायगी तो कोई संवेदन नहीं होगा और यदि कभी होगा तो शीतलताका होगा उष्णताका नहीं ।

विद्यार्थी परीक्षा करें । तीन बरतनोंमें तीन प्रकारका जल-बरफका जल, साधारण जल और गरम जल लें । गरममें एक हाथ और बरफके जलमें दूसरा हाथ डुबोकर फिर दोनोंहाथ एक संग साधारण जलमें डुबोवें और बतावें कि जल गरम है या ठंडा ।

जैसे शरीर-चर्ममें स्पर्श-स्थान, शीत-स्थान और उष्ण-स्थान हैं वैसे ही दुःखस्थान भी भिन्न हैं । यदि ये स्थान उत्तेजित हो जाते हैं तो दुःखका अनुभव होता है । जिस प्रकार उष्ण-स्थानोंके उत्तेजित हो जानेसे केवल उष्णताका बोध होता है शीतका नहीं, इसी प्रकार दुःख-स्थानोंसे दुःखहीका बोध होता है शीतोष्णताका नहीं । दुःख-स्थान जाननेके लिये

पूर्वकथित चित्रमें निर्देश करो। एक सुई लेकर हथेलीके भिन्न भिन्न स्थानों पर रक्खो और जहाँ दुःख प्रतीत हो उसको दुःखका स्थान समझो और चित्रमें तीसरे रंगकी पेंसिलसे निर्देश करते जाओ।

स्पर्शमें एक और प्रकारके संवेदन सम्मिलित हैं जिनको मांस-पेशियोंके संवेदन (Muscular sensation) कहते हैं। जब कोई भारी वस्तु उठाई जाती है तो मांस-पेशियों पर एक प्रकारका खिचाव पड़ता है और मनको यह खिचावका संवेदन-भार अलग प्रतीत होता है। जिस समय हम हलकी वस्तु उठाते हैं तो यह खिंचावका संवेदन अनुभव नहीं होता। यह भी बहुधा देखा गया है कि जिन मनुष्योंकी भार-संवेदनशक्ति जाती रही है वे खिचावका बराबर अनुभव करते रहे हैं और जिनकी खिचाव शक्ति जाती रही है वे भार मालूम करते रहे हैं।

हम भूख, प्यास, थकावट आदि सामान्य संवेदन भी अनुभव करते हैं। ये सामान्य संवेदन आन्तरिक अवयवोंके प्रभावित होनेसे प्रतीत होते हैं। सामान्य संवेदनोंसे स्वशरीरका और विशेष संवेदनोंसे बाह्य संसार-का ज्ञान आता है। एक भूखा व्यक्ति कहीं भी चला जाय क्षुधा संग संग जायगी; परन्तु एक चित्रका संवेदन अन्य स्थान पर चले जानेसे, मुख फेर लेनेसे या चित्र अन्यत्र ले जानेसे नहीं रहेगा। इन अनुभवोंसे मनुष्य यह समझने लगता है कि यह मेरा शरीर है, अन्य पदार्थ मेरे शरीरसे भिन्न वस्तु हैं।

रोचक प्रश्नावली।

(१) शिशुको प्रथम स्वशरीरका ज्ञान होता है या बाह्य वस्तुओंका ?

(२) स्पर्श और दृष्टिकी तुलना करो कि मनको कौन अधिक सामग्री पहुँचाती है।

(३) तुम्हारा प्रति-कार्य-समय कितना है ?

(४) यदि तुम्हारी स्पर्शशक्ति अधिक तेज हो जाय तो तुमको लाभ हो या हानि ?

(५) सिद्ध करो कि शब्द, रूप, रंग, शीतोष्ण सब एक ही वस्तु हैं, भिन्न-भिन्न नहीं।

छठा अध्याय।

संवेदन।

हम स्वाद, घ्राण, श्रवण, दृष्टि और स्पर्श, पाँचों ज्ञानेंद्रियोंका विवरण लिख आये हैं। मनका स्वाध्याय करनेके लिये मनके साधनोंका स्वाध्याय करना आवश्यक है। बाह्य संसारका ज्ञान मन तक पहुँचानेमें इंद्रियाँ सड़कके समान हैं। इंद्रियकी आवश्यकता और महानताकी कल्पना करनेके लिये उन अभागोंकी दशा पर विचार करना चाहिये जिनकी कोई एक इंद्रिय नष्ट हो गई हो। अंधों, बहरों आदिकी जाँच करो और देखो उनका मन कितना संकीर्ण हो जाता है, उनका ज्ञान कितना कम हो जाता है और उनका आनन्द कितना जाता रहता है। इंद्रियजनित ज्ञानके बिना इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, कल्पनादि वृत्तियोंकी सम्भावना नहीं। जैसे मंदिरके लिये ईंट, गारा और लकड़ीकी जरूरत होती है और बिना सामग्री कोई महल-मंदिर खड़ा नहीं हो सकता, वैसे ही मानसिक मंदिरकी बनावट भी बिना इंद्रियसंवेदनोंके नहीं हो सकती। यह स्वतः सिद्ध है कि भिन्न भिन्न प्रभावोंके कारण चित्तकी दशा भी परिवर्तित होती रहती है। अन्धेरे उजालेका प्रभाव कुछ और ही पड़ता है; गरमी, शरदी, गाने, रोनेसे चित्तकी वृत्ति कुछ अन्य ही प्रकारकी हो जाती है। तात्पर्य यह है कि मानसिक जीवनके लिये इंद्रियजनित ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है; अतः मनको जाननेके वास्ते इंद्रियोंका जानना कि ये किन किन नियमोंके अनुसार कार्य करती हैं आवश्यक है।

केवल संवेदन मनोविज्ञान-पंडितोंकी एक कल्पना मात्र है। वास्तविक जीवनमें केवल संवेदनका अनुभव नहीं होता। सम्भव है कि वह शिशु

अवस्थामें होता हो। परन्तु, हम जहाँ लालका अनुभव करते हैं वहाँ लाल वस्तुका अनुभव करते हैं कि अमुक वस्तु लाल है। लाल वस्तुके ज्ञान बिना केवल लालका अनुभव कभी नहीं होता। जिस अनुभवमें वस्तुका ज्ञान न हो उसको संवेदन कहते हैं। इसमें केवल इंद्रियजनित प्रभावका ज्ञान होता है। बाह्य उत्तेजक तो हो परन्तु उत्तेजित करनेवाले पदार्थका ज्ञान न हो, केवल उत्तेजनाका ही बोध हो, हमारे जीवनमें इस प्रकारका अनुभव सर्वथा असम्भव है। किन्तु वैज्ञानिक प्रयोजनके लिये मानसिक जीवनके इस सोपानकी भी कल्पना करनी पड़ती है कि मनकी कार्यशैली भले प्रकार समझमें आ जाय।

चित्तमें मनोविज्ञानिक संवेदन उत्पन्न होते हैं। ये हमारे चित्तके अद्भुत परिवर्तन हैं। परन्तु असंख्य प्राकृतिक शक्तियाँ जबतक विशेष विषय–सम्बन्धी इंद्रियको उत्तेजित नहीं करतीं तब तक संवेदन उत्पन्न नहीं होता। असाधारण कारणोंसे बाह्य उत्तेजकके अभावमें भी हम बहुधा देखने, सुनने, सूँघने, चखने, शीतोष्ण अनुभव करने लगते हैं। हमारे मनकी स्वकल्पनायें मूर्तिमान होकर हमारे सम्मुख खड़ी हो जाती हैं, परन्तु सामान्यतया बिना बाह्य उत्तेजकके संवेदन उत्पन्न नहीं होता। प्रकाशकी किरणें जब चक्षुपर पड़ती हैं तो हम प्रकाश देखते हैं। वायुकम्पन जब हमारे श्रवण-पटल पर आक्रमण करते हैं तो हम शब्द सुनते हैं। इसी प्रकार बाह्य उत्तेजककी उपस्थितिमें ही स्वाद, घ्राण और स्पर्शका अनुभव होता है। इंद्रियोंको प्रभावित करनेवाले बाह्य पदार्थोंको बाह्य उत्तेजक—(External stimulus) और अन्तःस्थित प्रभावोंको आन्तरिक उत्तेजक (Internal stimulus) कहते हैं।

ब्रह्माण्डमें अनेक उत्तेजक हैं किन्तु हमारी इंद्रियाँ अपेक्षाकृत बहुत न्यून उत्तेजकोंसे उत्तेजित होती हैं। उदाहरणके लिये श्रवण, दृष्टि

और स्पर्शको लो। ये शक्तियाँ वायुकम्पनोंसे उत्तेजित होती हैं। वायुमंडलमें वायुकम्पन एकसे असंख्य संख्या तक प्रति सेकंड होते रहते हैं। एक कम्पन प्रति सेकंडसे ११ कम्पन प्रति सेकंड तक कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ११ से ६०००० तक श्रवण इंद्रिय ग्रहण करती है जिसका शब्दसंवेदन उत्पन्न होता है। वायुकम्पन बराबर बढ़ते रहते हैं परन्तु उन्हें कोई इंद्रिय ग्रहण नहीं करती। जब वायुकम्पन एक करोड़ अस्सी लाख प्रतिसेकंड होते हैं तब स्पर्श प्रभावित होने लगती है और उष्णताका संवेदन अनुभव होने लगता है। इसके पश्चात् फिर दूर तक कोई संवेदन नहीं। चार खरब साठ अरब प्रति सेकंड वायुकम्पनोंपर चक्षु प्रभावित होने लगता है और लालका संवेदन अनुभव होता है। सात खरब तीस अरब पर नीलेका अनुभव होकर उपरान्त अन्धेरा हो जाता है। अर्थात् १२ और सात खरब तीस अरब कम्पनोंसे परे हमारी इंद्रियोंका विषय नहीं।

सर्व मनुष्योंमें संवेदनशक्ति समान नहीं होती; भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें यह शक्ति भिन्न भिन्न रूपसे पाई जाती है। यह विभिन्नता स्वाभाविक और कृत्रिम दो प्रकारकी होती है। कुछ मनुष्योंकी इंद्रियोंमें स्वाभाविक ही न्यूनाधिकता होती है परन्तु अन्य व्यक्ति अभ्यास द्वारा स्वशक्तियोंको पुष्ट कर लेते हैं। बहुतसे गायक सुरतालकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म गलती और विभिन्नताको समझ जाते हैं, परन्तु अन्य महानुभाव साधारण सुरतालको भी नहीं पहिचान सकते। कुछ मनुष्य लाल-अन्धे हरे-अन्धे होते हैं, दूसरे व्यक्ति प्रत्येक प्रकारके रंगको देख सकते हैं। चाय चखने वाले चखकर बता देते हैं कि यह चाय अमुक स्थानकी है किन्तु बहुत पुरुष यह भी नहीं बता सकते कि क्या वे आलू खा रहे हैं या अरबी, मूँगकी दाल खा रहे हैं या उड़दकी। नागरिक शौकीन

लोग सूँघकर इत्र फुलेल पहिचान लेते हैं कि यह गुलाब है या केवड़ा; परन्तु ग्रामीणलोग उन्हें नहीं जानते । जैसी कि कहावत है—एक गँवारको इत्र दिया, उसने चख कर बता दिया कि मीठा नहीं !

एक संवेदनकी उत्पत्तिके लिये चार बातोंकी आवश्यकता है । इन चारोंमेंसे यदि एक भी कम होगी तो संवेदन उत्पन्न नहीं हो सकता । प्रथम बात है बाह्य उत्तेजक । यदि बाह्य उत्तेजक नहीं तो संवेदन भी नहीं । बाह्य उत्तेजकके अभावमें संवेदनका भान नहीं । बाह्य उत्तेजकके अभावमें जो हम देखते सुनते हैं वह संवेदन नहीं कहाता, वह भ्रम कहाता है । दूसरी आवश्यक बात है ज्ञानतन्तु । बाह्य उत्तेजक तो हो परन्तु उत्तेजना ले जानेवाला तन्तु न हो तो भी संवेदन नहीं हो सकता । उत्तेजनाको मन तक पहुँचाना ज्ञानतन्तुओंका व्यापार है । जैसे तारके बिना विद्युत्प्रवाह नहीं हो सकता वैसे ही तन्तुके बिना उत्तेजनाका प्रवाह नहीं हो सकता । जहाँ उत्तेजनाका प्रवाह ही नहीं वहाँ संवेदनकी भी सम्भावना नहीं । तीसरी बात है ग्रहण करनेवाला मन । बाह्य उत्तेजक भी हो और तन्तुप्रवाह भी हो परन्तु यदि उत्तेजनाको ग्रहण करनेवाला मन न हो तो ये दोनों व्यर्थ हो जावें । संवेदन तो मनमें उत्पन्न होता है; उत्तेजक या उत्तेजना संवेदन नहीं, यह शारीरिक परिवर्तन मात्र है। जिसको संवेदन कहते हैं वह मनका परिवर्तन है शरीरका नहीं । तीनों बातोंके होते हुए भी यदि उत्तेजक ऐसा न हो कि इन्द्रियको प्रभावित कर सके तो भी संवेदन नहीं होता । अतः संवेदनकी उत्पत्तिके लिये उत्तेजक तंतु, ग्रहणकर्ता मन और पर्याप्त—उत्तेजक प्रभावकी आवश्यकता होती है ।

गुणके सम्बन्धसे संवेदनमें तीन बातें सर्वदा पाई जाती हैं । एक प्रकार, (Quality) अर्थात् प्रत्येक संवेदन किसी न किसी प्रकारका होता है—

यथा खट्टा, चरपरा, सुरीला, लाल, पीला आदि । दूसरा गुण बल या अधिकता (Intensity) का होता है, अर्थात् प्रत्येक संवेदनमें कुछ न कुछ बल होता है—यह अधिक खट्टा है वह कम खट्टा है । तीसरा गुण समय (Duration) का है; अर्थात् प्रत्येक संवेदनका न्यूनाधिक समय अवश्य होता है, कोई विना समयके नहीं हो सकता है ।

इंद्रियोंके सम्बन्धसे संवेदन पाँच प्रकारका होता है—रस, गंध, शब्द, दृष्टि और स्पर्श । परन्तु एक ही इंद्रियके संवेदन अनेक प्रकारके होते हैं । शब्द-शब्दमें, गंध-गंधमें, स्वाद-स्वादमें, प्रकाश-प्रकाशमें और स्पर्श-स्पर्शमें असंख्य भेद पाये जाते हैं । एक शब्द सुरीला है तो दूसरा कटु । यदि एक गुलाबकी गंध मनोमोहन है तो दूसरी केवड़ेकी आनन्दकारी और तीसरी गन्दगीकी हानिकारक । एक वस्तु मीठी है तो दूसरी खट्टी । इस प्रकार संवेदनमें अनेक भेद हैं और ये तीन कारणोंपर अवलम्बित हैं । प्रथम कारण है, स्रोत, अर्थात् संवेदन कहाँ और किस द्वारसे आता है । एक मेवका स्वादसंवेदन मीठा और कुनैनका कड़वा होता है, क्यों कि एक संवेदन सेवसे आता है और दूसरा कुनैनसे । दूसरा कारण है कि संवेदन कितने समय तक रहता है । यदि एक आनन्ददायक संवेदन भी निरन्तर बना रहे तो दुःखदायक प्रतीत होने लगता है । प्रति दिन एक ही प्रकारका भोजन, अधिक समय तक एक ही प्रकारका गाना और एक ही प्रकारका इत्र भला ज्ञात नहीं होता । निरन्तर आनन्द प्राप्तिके लिये परिवर्तनकी आवश्यकता होती है । तीसरे पूर्ववर्ती संवेदनका प्रभाव भी संवेदन पर पड़ता है । यदि हम लाल वस्तु देखकर श्वेतकी तरफ देखें तो हरा नजर आयगा । मीठेपर नमक और नमकपर मीठा अधिक स्वादु लगता है ।

संवेदनका दूसरा गुण है बल । एक ही प्रकारका संवेदन बल-

सम्बन्धसे अनेक प्रकारका हो जाता है । एक ही चमेलीकी गन्ध, हलकी, तेज और इतनी तेज कि सहन भी न हो सके बहुत प्रकारकी हो जाती है । संवेदनबलका आधार भी तीन कारणोंपर है । प्रथम उत्तेजककी अधिकता और न्यूनता, अधिक उत्तेजकसे संवेदन बलवान् और न्यून उत्तेजकसे संवेदन हलका होता है । एक छोटीसी नमककी डलीका संवेदन साधारण और छटाक भर नमकका संवेदन असह्य हो जाता है । छोटी ढोलकीका शब्द हलका और नक्कारेका शब्द भारी प्रतीत होता है । दूसरे जिस संवेदनको सावधानतापूर्वक ग्रहण किया जाता है वह बलवान् और जिस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता वह निर्बल रह जाता है । तीसरे शारीरिक अवस्था प्रभाव करती है । यदि शरीर रोगी या निर्बल होता है तो उस पर न्यून उत्तेजकका भी प्रभाव अधिक पड़ता है । संवेदनका तीसरा गुण है समय । कोई भी संवेदन हो वह न्यूनाधिक समय अवश्य लेगा ।

संवेदनके ये तीन गुण, प्रकार, बल, और समय संवेदनकी स्थितिके लिये आवश्यक हैं । यदि तीनोंमेंसे कोई एक भी न हो तो संवेदन असम्भव हो जाता है । जो संवेदन होगा उसका कोई न कोई प्रकार होगा, साथ ही वह हलका, भारी या तेज होगा और समयमें होगा, अन्यथा संवेदन असम्भव हो जायगा ।

कुछ मनोविज्ञानवेत्ता संवेदनमें एक चौथा गुण फैलाव (Extensity) का बताते हैं, किन्तु यह गुण सर्व संवेदनोंमें नहीं होता । एक अंगुलीके दर्दसे हाथका दर्द अधिक फैला हुआ होता है । बहुधा शब्द ऐसे प्रतीत होते हैं मानो बड़े भारी आकाशमें फैले हुए हैं । शौकीन छैलोंके कमरोंमें जानेसे सारा स्थान सुगन्धपूरित मालूम होता है । ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं । विद्यार्थी स्वयम् स्वानुभवोंमेंसे पाँच पाँच बतावें ।

सब संवेदन नितान्त सरल नहीं होते, अधिकांश जटिल होते हैं। स्वाद-संवेदनमें प्रायः, गन्ध, दृष्टि और स्पर्श मिश्रित होता है। दृष्टिमें स्पर्शका प्रभाव पाया जाता है। दूरीका ज्ञान दृष्टिहीका नहीं है इसके लिये स्पर्शकी भी आवश्यकता है। स्पर्शमें छूने, शीतोष्णता, दुःख और मांस-पेशियोंके संवेदन मिले रहते हैं। और एक ही संवेदन लगातार उत्ते-जकोंके प्रभावसे कुछ अन्य ही हो जाता है। परन्तु संवेदनकी यह जटिलता मनके लिये लाभदायक है। इसके कारण मन संवेदन-स्थानका पता लगा लेता है कि अमुक संवेदन पैरसे, हाथसे, पीठसे या मुखसे आया है।

रोचक प्रश्नावली।

(१) किंडर-गार्टनसे क्या लाभ है ?

(२) लाल रंगको उष्ण और नीले रंगको शीत रंग कहते हैं। क्यों ?

(३) संवेदन कोई ज्ञान नहीं है। क्या यह ठीक है ?

(४) यदि एक अध्यापक ऊँचे शब्दोंमें सर्वदा आज्ञा दिया करे तो उसके विद्यार्थियों पर उसकी आज्ञाओंका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

(५) इंद्रियाँ मनके राज-पथ हैं। इस विषय पर एक निबन्ध रचो।

सातवाँ अध्याय।

प्रत्यक्ष।

वास्तविक जीवनमें संवेदन मनोविज्ञान पंडितोंकी एक कल्पना मात्र है। हम केवल संवेदनका ही अनुभव नहीं करते किन्तु संवेदन उत्पादक वस्तुका भी अनुभव करते हैं। जिस समय हमारे मनमें कोई संवेदन उत्पन्न होता है हम उसी क्षण उस संवेदनको बाह्य संसारमें उस वस्तुसे लगता हैं जहाँसे वह उत्तेजना आई थी। उदाहरणके लिये कुछ वायुकम्पनोंने हमारी दृष्टि पर प्रभाव किया और हमको रंगका संवेदन हुआ। हमारा मन उस संवेदनको तत्काल वापिस बाह्य संसारमें उस वस्तुसे लगावेगा जिससे वे कम्पन आये थे कि यह इस चित्रका संवेदन है और चित्रका अनुभव हो जायगा। इस मानसिक शक्तिका उद्देश संवेदन उत्पन्न करनेवाली वस्तुको उसी क्षण मनके सम्मुख उपस्थित कर देना है। इस प्रकारके वस्तुज्ञानको प्रत्यक्ष (Perception) कहते हैं।

यद्यपि सारे संवेदन मनसे बाह्य संसारमें स्थान और वस्तुसे लगाये जाते हैं परन्तु प्रत्यक्ष धीरे धीरे पुष्ट होता है। सारी अवस्थाओं और सारे व्यक्तियोंमें प्रत्यक्ष शक्ति समान नहीं पाई जाती। आरम्भिक शिशु अवस्थामें शिशुको प्रत्यक्ष नहीं होता। शब्द, गन्ध, दृष्टि आदिका संवेदन शिशुको होता है, परन्तु वह संवेदनकारी वस्तुको नहीं जानता। दो मासकी अवस्थाके पश्चात् शिशु शब्द और रूपकी तरफ आँखें फेरनी प्रारम्भ करता है और अवस्थानुसार धीरे धीरे अन्य वस्तुओंका प्रत्यक्ष करने लगता है। शिशुजीवनका स्वाध्याय एक बड़ा रोचक विषय है। यह जानना चाहिये कि किस किस अवस्थामें शिशुको कौन कौन पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं।

स्वाद, गंध, शब्द, प्रकाश और स्पर्शको शिशु किस किस अवस्थामें समझने लगता है और स्वमाता-पिता और अन्य सम्बधियोंको कब पाहिचानने लगता है। मनुष्य-मनुष्यमें भी भेद होता है। एक व्यक्तिकी आँख तत्क्षण प्रत्यक्ष कर लेती है और दूसरेकी नहीं करती, और यदि करती है तो बहुत धीरे धीरे और बड़े परिश्रमसे। मनोविज्ञानने इस विषयमें निरन्तर प्रयत्न किया है, परन्तु मनुष्यप्रकृतिको यथायोग्य जानना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

इंद्रियोंके सम्बन्धसे प्रत्यक्ष दो भागोंमें विभक्त किया जाता है। (१) स्वाद, घ्राण, और शब्दका प्रत्यक्ष (२) दृष्टि और स्पर्शका प्रत्यक्ष। स्वाद, घ्राण और शब्दके प्रत्यक्षमें इंद्रियोंसे वस्तुओंका सीधा सम्बन्ध नहीं होता किन्तु वस्तुओंके वास्तविक स्वरूपका अनुमान लगाया जाता है। दृष्टि और स्पर्शके प्रत्यक्षमें वस्तुओंसे इंद्रियोंका सीधा सम्बन्ध होता है। हमारे श्रवणमें वायुकम्पनोंका प्रभाव होनेसे इस बातका प्रत्यक्ष होता है कि कहीं सितार बज रहा है। हमारी नासिकामें गन्ध परमाणुओंका प्रवेश होनेसे यह प्रत्यक्ष होता है कि कहीं गुलाब खिल रहा है। और यदि स्वादमेंसे स्पर्शको निकाल दें तो स्वादको ऐसा ही प्रत्यक्ष होता है कि यह अमुक वस्तुका स्वाद है। परन्तु इन इंद्रियोंसे वस्तुके वास्तविक स्वरूपका प्रत्यक्ष सीधा नहीं होता। दृष्टि और स्पर्श वस्तुके वास्तविक स्वरूपका सीधा प्रत्यक्ष कराते हैं। जब तक वस्तु दृष्टिके सम्मुख न हो तब तक वस्तुका प्रत्यक्ष नहीं होता। इसी प्रकार जब तक वस्तुका वास्तविक स्पर्श न हो स्पर्शका प्रत्यक्ष नहीं होता। स्वाद, घ्राण और शब्दकी अपेक्षा दृष्टि और स्पर्शसे ज्ञान अधिक प्राप्त होता है। वस्तुओंका रूप, रंग, आकार, दूरी, शीत, उष्णता, भार, चिकनाहट और खुरदरा-पन और परस्पर वस्तु सम्बन्धका ज्ञान ही दो इंद्रियोंसे आता है। दृष्टि

और स्पर्शमें स्पर्श अधिक ज्ञानदायक है, परन्तु दृष्टिमें यह शक्ति है कि अन्य इंद्रियोंके विषयोंको अपना बना लेती है और फिर केवल देखनेसे आकार, दूरी आदिका प्रत्यक्ष होने लगता है।

चक्षु किस प्रकार अन्य इंद्रियके विषयको ग्रहण कर लेता है। इसका एक उदाहरण प्रो० बुअलने दिया है कि एक लड़का था जो जन्मसे अन्धा था। उसने एक बिल्ली और कुत्ता पाल रक्खे थे। भाग्यवश डाक्टरोंके प्रयत्नसे उसको दृष्टि शक्ति मिल गई। दृष्टि मिलने पर वह लड़का केवल दृष्टिसे यह पहिचान नहीं सका कि कौन बिल्ली है और कौन कुत्ता। उसने दोनों जानवरों पर हाथ फेरा और साथ साथ देखता भी गया। पश्चात् केवल देखने मात्रसे वह कुत्ते और बिल्लीको पहिचानने लग गया।

हम अभी कह आये हैं कि हम संवेदनको एक विशेष वस्तु और एक विशेष स्थानसे सर्वदा लगाते हैं। इस पर यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि हम पूर्वसे ही उस वस्तु और स्थानको नहीं जानते तो हम यह कैसे कर सकते हैं और हमारा नवीन अनुभव हमारे ज्ञानभंडारमें वृद्धि कैसे कर सकता है। इसका उत्तर मनोविज्ञानवेत्ता यह देते हैं कि संवेदन और प्रत्यक्ष शिशु अवस्थामें होते हैं और वास्तविक जीवनमें प्रत्यक्षकी अपेक्षा उपलब्धि (Appeıception) होती है। पूर्वज्ञानके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष यह उपलब्धिका अर्थ लगाया जाता है। प्रत्यक्षके स्थानमें उपलब्धि शब्दका प्रयोग करनेसे उपर्युक्त शंकाका समाधान तत्काल हो जाता है। जो शब्द हम सुनते हैं उसकी तुलना पूर्व अनुभूत प्रत्यक्षसे करते हैं। यदि शब्द पूर्व अनुभूत शब्दसे बिल्कुल मिलता है तो उसको उसी समय नाम दे दिया जाता है कि यह अमुक शब्द है। और यदि कोई विभिन्नता होती है तो उसको पूर्वसंचित ज्ञानभंडारमें जोड़ लिया

जाता है। ज्ञान विवेकको कहते हैं। जैसे जैसे हम वस्तुओंकी साम्यता और विभिन्नताका अनुभव करते जाते हैं हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है। जो व्यक्ति वस्तुओंमें जितना जल्दी और ठीक ठीक विवेक करेगा वह उतना ही अधिक बुद्धिमान होगा।

हमारे प्रत्येक ज्ञान पर पूर्वसंचित अनुभवोंका रंग अवश्य चढ़ा होता है। भिन्न भिन्न व्यक्ति एक ही वस्तुको भिन्न भिन्न प्रकारसे अनुभव करते हैं। बुद्धिमान पुरुष वार्त्तालापसे मनुष्योंके स्वभाव और उनके जीवन-इतिहास जान जाते हैं। उदाहरणके लिये एक वृक्ष लो और देखो भिन्न भिन्न व्यक्ति एक ही वृक्षकी बाबत क्या कहते हैं। एक उसकी छालको देखेगा कि इससे रंग बन सकता है। दूसरा उस पर विश्राम करनेवाले पक्षियों पर ध्यान करेगा। तीसरा उसमेंसे बननेवाले तखते और लट्ठोंका वर्णन करेगा। चौथा उसकी सुन्दरता और पाँचवाँ उसकी छायासे पथिकोंको लाभ अनुभव करेगा। विद्युतकी अस्थिरताको देखकर विरहव्यथित होनेपर भी महाराजा रामचन्द्रजी खलोंकी अस्थिर प्रीतिका ध्यान करते हैं, परन्तु दाग और जौक नवयौवनाके चञ्चल नेत्रोंका खयाल करते हैं। एक बैरागीको संसारकी अनित्यताका ध्यान आजाता है और एक कंजूस मक्खी चूसको अपने गड़े हुए धनका फिकर सता जाता है कि लक्ष्मी चञ्चल होती है। एक वदनी अर्थात् सट्टा करनेवाले मारवाड़ीको बाजारभावकी स्मृति आ जाती है।

हमको सर्वदा उपलब्धि होती है। हम उपलब्धिको दूर नहीं कर सकते। परन्तु हमारी उपलब्धि ऐसी होनी चाहिये जिससे हमको पूर्व अनुभवसे अधिक ज्ञान हो। हम जिस वस्तुको देखें या सुनें उसको भली प्रकार देखें या सुनें। कुछ देखा, कुछ नहीं देखा, कुछ सुना, कुछ नहीं सुना, अच्छा नहीं। इससे नवीन ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। इसकी जाँच करनेके

लिये कि तुम कितनी स्पष्ट उपलब्धि करते हो लिखो तुम्हारे घरमें कितने सोपान हैं ? जिस बाजारमेंसे प्रातिदिन आते जाते हो उसमें कितनी दुकानें हैं और किन किन व्यक्तियोंकी हैं ? आज सैरमें तुमने क्या देखा ? क्या तुम अपने स्कूलका नकशा खींच सकते हो ?

प्रत्यक्ष शक्तिका बढ़ाना बहुत आवश्यक है । जो प्रत्यक्ष शक्तिको पुष्ट करना चाहें उनको यह कार्य २१ वर्षकी आयुसे पूर्व करना चाहिए । इस अवस्थाके पश्चात् अभिप्रायसिद्धि महा कठिन हो जाती है । यदि हमको अपनी प्रत्यक्षशक्ति पुष्ट करना अभीष्ट है तो शीघ्र ही कार्यारम्भ कर देना आवश्यक है । देरमें देर ही होती है। इसमें हाउडिन (Hauadin) जादूगरका उदाहरण शिक्षाप्रद है । हाउडिन स्वपुत्रको प्रत्यक्ष शक्तिमें निपुण करना चाहता था । वह उस पुत्रको बाजारमें ले जाया करता था और दोनों—पिता और पुत्र—एक दृष्टि किसी एक बड़ी दूकानपर करते और फिर परस्पर तुलना करते कि पिताने कौन कौन वस्तु देखी और पुत्रने कौन कौन देखी । प्रथम तो पिता पुत्रसे आधिक रहा, परन्तु शिक्षाके अन्तमें पुत्र पितासे बढ़ गया । वह एक ही दिनमें बहुतसी वस्तुयें देख लेता था और उनका वर्णन भी कर सकता था । युवा पुरुषोंको चाहिये कि यह अभ्यास अवश्य करें । दो मनुष्य मिलकर किसी अजायब घरमें या अन्य स्थान या दूकानपर जायँ और एक दृष्टिमें जितनी वस्तुयें देख सकें उनकी बाहर आकर तुलना करें । थोड़े दिनोंमें उनको अच्छा अभ्यास हो जायगा ।

वर्त्तमानमें प्रत्यक्ष शक्ति बहुत घटती जा रही है और ऐसी ही दशा रही तो इस शक्तिका उल्लेखनीय ह्रास हो जायगा । आजकल वस्तुओं, स्थानों और अन्य विषयोंको स्वयम् प्रत्यक्ष करनेकी अपेक्षा पुस्तकों पर आधिक निर्भर रहना होता है । किसी दर्शनीय स्थान पर जायँगे तो उस स्थानका वर्णन प्रथम पढ़ लेंगे और बहुधा पुस्तकको संग ले जायँगे । जो दृश्य वह पुस्तक

देखनेको कहेगी वही देखेंगे, अधिक कुछ नहीं। इस प्रकार अन्य मनुष्योंके अनुभवों पर निर्भर रहना और स्वयम् कुछ प्रत्यक्ष न करना स्वशक्तिको नष्ट करना है। यही कारण है कि आधुनिक शिक्षितोंको पुस्तकोंके कीड़े कहा जाता है। ये बेचारे गरीब बिना पुस्तकके अन्धेसे कम नहीं। ये यूनान और रोमकी बात बता सकते हैं कि अमुक समयमें अमुक राजा था। वहाँ कितने झील, ताल, नदी और पहाड़ हैं, परन्तु अपने ग्राम या नगरका ज्ञान कुछ भी नहीं रखते। उनको यह भी ज्ञात नहीं कि दूसरे ग्रामको कौनसा रास्ता जाता है। किसी लेखककी लेखशैली और विचारोंके विषयमें जो कुछ एक टीकाकारने बता दिया रट लिया, स्वयम् समझनेका कौन दुःख उठावे। शिक्षाका प्रयोजन मानसिक शक्तियोंका संवर्धन करना है संसारभरकी व्यर्थ बकवासोंसे स्मृतिको लादना नहीं।

प्रत्यक्ष शक्तिको संवर्धित करनेके लिये इंद्रियोंकी शक्ति पुष्ट करनी चाहिये। इस सम्बन्धमें दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम लगातार अभ्यासकी आवश्यकता है। अभ्यासके विना कोई शक्ति पुष्ट नहीं हो सकती। दूसरे सत्संग अर्थात् ऐसे पुरुषोंका संग करना चाहिये जिनकी प्रत्यक्षशक्ति बलवान् हो। संगतिका प्रभाव बहुत पड़ता है। यदि दो मनुष्य पास पास रहेंगे तो एक दूसरेके आचार, विचार और अभ्यास बहुत कुछ समान होते जायँगे। अतः अच्छी संगतिका प्रभाव अच्छा और बुरी संगतिका प्रभाव बुरा पड़ता है।

प्रत्यक्ष शक्तिको संवर्धित करते समय दो बातोंका और ध्यान रखना चाहिये। पहली बात तो यह है कि हम वस्तुओंका प्रत्यक्ष कितना शीघ्र कर सकते हैं और कितनी वस्तुओंका प्रत्यक्ष एक संग कर सकते हैं। दूसरे यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारा प्रत्यक्ष कहाँ तक ठीक है। वस्तुओंका प्रत्यक्ष याथातथ्य होना चाहिये। गलत प्रत्यक्षसे क्या लाभ,

उल्टा हानि है। जहाँ प्रत्यक्ष शीघ्र हो वहाँ ठीक हो। शीघ्र तो हुआ परन्तु गलती हुआ तो कोई लाभ नहीं। वस्तुका प्रत्यक्ष ठीक ठीक करनेके लिये वस्तुको अलग अलग भागोंमें विभक्त करो। सब भागोंको समग्रसे तुलना करो। इस प्रकार प्रत्यक्ष ठीक ठीक होगा।

रोचक प्रश्नावली।

(१) नीच और ऊँच पुरुषोंकी संगतिमें किसको हानि और किसको लाभकी सम्भावना है? और क्यों?

(२) शिशुको प्रत्यक्ष किस अवस्थामें होने लगता है?

(३) बालशिक्षाकी उत्तम पद्धति क्या होनी चाहिये?

(४) प्रत्येक इंद्रियकी प्रत्यक्ष शक्ति कैसे पुष्ट हो सकती है?

(५) संवेदन और प्रत्यक्षमे क्या भेद है?

(६) वर्त्तमान शिक्षाप्रणालीमे क्या दोष है? इस पर एक निबन्ध लिखो।

आठवाँ अध्याय ।

अवधान ।

हम गत अध्यायोंमें यह बता आये हैं किस प्रकार बाह्य संसारसे इंद्रियाँ प्रभा-वित होती हैं, किस प्रकार वह प्रभाव ज्ञान-तन्तुओंद्वारा मनतक पहुँचता है, किस प्रकार संवेदन उत्पन्न होते हैं और कैसे बाह्य संसारका प्रत्यक्ष होता है। अब हम यह लिखेंगे कि किस प्रकार यह सामान विचारको संवर्धित करता है, अर्थात् इस सामानसे विचार कैसे उत्पन्न होते हैं। विचार ज्ञानका सबसे ऊँचा सोपान है। विचारका संवर्धन करनेमें प्रत्येक प्रकारका प्रत्येक सामान नहीं बरता जाता। सामानमेंसे चुनावकी जरूरत होती है। यदि मनमें यह चुनावकी शक्ति न हो, यदि मन पर प्रत्येक वस्तुका प्रभाव जमा रहे तो मनकी बड़ी भारी दुर्दशा हो, न मालूम किस किस बाही-तवाहीका बोझ मन पर पड़ा रहे और मन एक भानमतीके झोलेके समान हो जावे। मन स्वकार्योपयोगी वस्तुओंको चुन लेता है और निकम्मी व्यर्थ बातोंको छोड़ देता है। जैसे एक फोटोग्राफर चित्र लेनेके लिये एक विशेष वस्तु पर फोकस जमाता है, वैसे ही मन विशेष ज्ञानप्राप्तिके लिये स्ववृत्तिको एक विशेष वस्तुकी तरफ लगाता है। मनकी इस शक्तिको अवधान (Attention) कहते हैं। साधारण बोलचालमें अवधानके वास्ते ध्यान शब्द भी प्रयोग किया जाता है। यथा—इधर ध्यान दो।

अवधानका लक्षण करना अत्यन्त कठिन है। हम अवधानका वर्णन कर सकते हैं किन्तु लक्षण नहीं बतला सकते। हम अवधानसम्बन्धी अनेक नियमोंका उल्लेख कर सकते हैं किन्तु अवधान ऐसे लगता है और ऐसे आकर्षित होता है अवधानका ज्ञान, विकार और संकल्पसे क्या संबन्ध है, यह नहीं कह सकते जैसे विद्युतका (Electricity) लक्षण

नहीं हो सकता किन्तु वर्णन होता है वैसे ही अवधानका भी वर्णन ही होता है, लक्षण नहीं। मनमें यह शक्ति है कि वह स्ववृत्तिको अन्य विषयोंसे हटा कर एक विशेष विषय पर लगा सकता है। मन इंद्रियोंको इस प्रकार वशीभूत कर सकता है कि अपना सारा अवधान एक इंद्रियके एक विषय पर लगा दे और अन्य इंद्रियोंके विषयोंका बिल्कुल ज्ञान न हो। योगीजनोंकी बाबत तो यहाँ तक सुना है कि वे अपने अवधानको आत्माचिंतन पर ऐसा लगा देते हैं कि उनको किसी भी इंद्रियके विषयका ज्ञान नहीं होता।

चेतनता और अवधान (Consciousness and attention) में भेद है। चेतनता मनकी वृत्तियोंके ज्ञानको कहते हैं और एक विषय पर वृत्ति लगानेकी शक्तिको अवधान कहते हैं। चेतनता निष्क्रिय होती है, और अवधानमें कुछ प्रयत्न भी पाया जाता है। यथा क्रोधकी वृत्तिका ज्ञान चेतनता है, किन्तु चित्तको क्रोधसे हटा कर किसी अन्य तरफ लगाना अवधान है।

हम इस अवधान-शक्तिकी परीक्षा और उन नियमोंको प्राप्त करते हैं जिनके अनुसार यह शक्ति कार्य करती है। किसी विषय पर अवधान लगानेके लिये दो बाते आवश्यक हैं—एक स्वास्थ्य और दूसरा उत्तेजक। कोई मनुष्य किसी विषय पर पर्याप्त अवधान लगा नहीं सकता यदि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं। जिसकी शारीरिक अवस्था निर्बल है वह किसी विषय पर अवधान कैसे लगा सकता है। यह अनुभवसिद्ध है कि जिसका शरीर निर्बल है उसका मस्तिष्क निर्बल है। स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीरमें ही रह सकता है। मानसिक बलके लिये शारीरिक स्वास्थ्यकी आवश्यकता है। प्रत्येक विद्यार्थी रोगी और निर्बल मनुष्योंकी जाँच करके इस सत्यताका पता लगा सकता है कि शारीरिक दशाका प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर कितना पड़ता है। वह विद्यार्थी महा भूल करते हैं जो स्वास्थ्य पर

ध्यान नहीं देते। वह शिक्षा व्यर्थ है जिसमें शारीरिक उन्नतिका ध्यान नहीं रक्खा जाता। वह माता, पिता या देश अपने कर्तव्यसे हीन है जो अपनी संतानके शरीरोंकी रक्षा और पुष्टिका विचार नहीं करता।

अवधानके संबन्धमें दूसरी बात उत्तेजक है। यदि गलीमेंसे बाजा बजता हुआ चला आवे तो हमारा अवधान एकदम उसी तरफ खिंच जाता है। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि बहुत ऊँचे और भारी उत्तेजकसे ही अवधान खिंचता है। बहुधा बहुत धीरे धीरे होनेवाले शब्दों पर भी अवधान लग जाता है। उदाहरणके लिये रंगशालामें पात्रोंका धीरे धीरे वार्तालाप ऊँचेसे ऊँचे शब्दसे भी अधिक बलवान् होता है। अतः किसी विषय पर अवधान लगानेके लिये स्वस्थ शरीर और प्रभाववान् उत्तेजककी जरूरत है।

अवधानके विषय दो प्रकारके होते हैं। एक बाह्य पदार्थ जो ज्ञान—इंद्रियोंद्वारा जाने जाते हैं। दूसरी आन्तरिक वृत्तियाँ जो मनमें उठती हैं। बाह्य विषय रस, गन्ध, शब्द, दृष्टि और स्पर्श होते हैं और आन्तरिक विषय, कल्पना, विचार, सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, संकल्प आदि होते हैं। इन विषयोंको भलीभाँति जाननेके लिये हम अपना अवधान उन पर लगाते हैं। जैसे एक फोटोग्राफर एक वस्तु पर फोकस जमाता है और वह वस्तु चित्रमें अन्य वस्तुओंसे स्पष्ट आती है वैसे ही हम एक वस्तु पर अवधान लगाते हैं और वह वस्तु अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट मन पर आती है।

एक समयमें हमारा अवधान एकसे अधिक वस्तुओं पर भी लगा हुआ होता है, परन्तु एक समयमें एक वस्तु पर अधिक और अन्य पर कम। हम मनोविज्ञान पढ़ रहे हैं; हमारा ध्यान बिल्कुल पुस्तकमें लगा हुआ है। हमारी मेज पर जो अन्य चीजें रक्खी हुई हैं उनकी तरफ हमारा

कोई ध्यान नहीं । किन्तु यदि कोई पुरुश एक वस्तु मेज परसे चुपचाप उठा ले तो हमारा ध्यान उस तरफ तत्काल खिंच जाता है और हमको ज्ञात हो जाता है कि अमुक वस्तु उठ गई । हम कमरेमें बैठे कुछ लिख रहे हैं, पास घड़ी रक्खी है । हम अपने कार्य्यमें इतने लगे हुए हैं कि हमको घड़ीका कुछ खयाल नहीं । परन्तु यदि घड़ी बन्द हो जाय तो फौरन पता लग जाता है । इन उदाहरणोंसे विदित होता है कि हमारे अवधानमें मेजपरकी अन्य वस्तुयें और घड़ीकी टिक–टिक थीं, किन्तु उन पर अवधान कम था । अवधानके केन्द्रमें अन्य विषय थे । असाधारण बात होने पर हमारा अवधान पूर्व विषयको छोड़कर नवीन की तरफ झुक गया । ऐसी अनेक घटनायें होती हैं किन्तु हम उनका वैज्ञानिक स्वाध्याय नहीं करते और न उन पर कोई ध्यान ही देते हैं कि यह क्या है और क्यों हो गई ।

अवधानको एक प्रकारका एक वृत्त समझो । वृत्त (Circle) में एक केन्द्र होता है । एक समयमें एक ही वस्तु अवधानके केन्द्रमें रहती है और उसका प्रभाव अन्य सब वस्तुओंसे अधिक और स्पष्ट होता है । जो वस्तु अवधान-केन्द्रसे जितनी दूरीपर होती है उसका उतना ही प्रभाव और स्पष्टता कम होती है । परन्तु अवधानके वृत्तमें जितने विषय होते हैं वे केन्द्रमें आनेका निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं । कोई एक वस्तु अवधानके केन्द्रमें ३-४ सेकंडसे अधिक समय तक नहीं रह सकती । विद्यार्थी परीक्षा करके देखें कि वे एक विषय पर कितने समय तक अवधान लगा सकते हैं । किसी विषय पर निरन्तर अवधान लगानेके लिये उस विषयको भिन्न भिन्न प्रकारसे स्वाध्याय किया जाय और अभ्यासद्वारा यह प्रयत्न किया जाय कि अवधान एक विषय पर अधिक काल तक लगा रहे । ऐसा अभ्यास अत्यन्त उपयोगी है, इसका प्रयत्न अवश्य होना चाहिये ।

अवधान सर्वदा किसी न किसी विषय पर अवश्य लगा रहता है। कोई समय ऐसा नहीं होता जब अवधान किसी विषय पर न लगा हो। जिसको हम यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति सावधान नहीं है उसका अभिप्राय यह होता है कि वह व्यक्ति किसी विशेष विषय पर अवधान नहीं लगा रहा है, किन्तु उसका अवधान किसी अन्य विषयोंकी तरफ जा रहा है। ऐसा कभी नहीं होता कि मन किसी भी विषय पर बिल्कुल न लगा हो। पाठशालामें एक विद्यार्थी अध्यापककी शिक्षा पर सावधान नहीं है। वह किसी अन्य बात पर ध्यान दे रहा है। सम्भवतः खेल तमाशोंकी बाबत सोच रहा हो या किसी मित्रसे मिलनेका ख्याल आ रहा हो। वह पाठ पर सावधान नहीं है, किन्तु किसी अन्य विषय पर अवश्य सावधान है।

अवधान दो प्रकारका होता है। एकको स्वतः अवधान (Involuntary attention) और दूसरे प्रकारको प्रयत्नशक्ति या इच्छित अवधान (Voluntary attention) कहते हैं। स्वतःअवधान किसी बलवान् उत्तेजक—बाह्य या आन्तरिकके—प्रस्तुत होनेपर खिंच जाता है। इसमें किसी प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं होती। यथा बाजारमेंसे हाथी निकलनेपर सब देखने लग जाते हैं। नक्कारखानेकी आवाज पर कान उधर ही लग जाते हैं। हमारा मन एक विषय पर स्थिर नहीं रहता, सर्वदा एक विषयसे दूसरे पर जाता रहता है। जो विषय अधिक आकर्षक हुआ उसी पर लग जाता है। प्रयत्नशील अवधान वह होता है जहाँ हम किसी विशेष विषय पर अवधान लगाते हैं। इस अवधानमें प्रयत्नकी आवश्यकता होती है। स्वतः अवधानमें किसी प्रकारके प्रयत्नकी जरूरत नहीं, उत्तेजकके उपस्थित होने पर अवधान स्वयम् खिंच जाता है। परन्तु अनेक विषय ऐसे होते हैं जिनको हम जानना चाहते हैं। उनपर अवधान लगानेमें प्रयत्न

खर्च होता है। जानवरों और बालकोंमें स्वतः अवधान अधिक होता है। अधिकांश मनुष्योंमें प्रयत्नशील अवधानकी अपेक्षा स्वतः अवधान अधिक प्रबल होता है। जिस तरफसे जो उत्तेजक आया झुक गये। ऐसी मोमकी नाक बनना नहीं चाहिये, कुछ कार्य्य बुद्धिसे भी लेना चाहिये। परमात्माने बुद्धि निरर्थक ही नहीं दी है।

अब हम उन नियमोंका वर्णन करते हैं जिनके अनुसार अवधान आकर्षित होता है। पहिला नियम है उत्तेजककी अधिकता (Intensity of stimulus)। जितना ही अधिक उत्तेजक होगा उतना ही अधिक अवधान उसकी तरफ आकर्षित होगा। यदि हम भीनी भीनी गुलाब-गंध सूँघ रहे हों और कमरेमें केवड़ेकी शीशी फूट जाय या मिट्टीका तेल गिर जाय तो एकदम हमारा अवधान उस नवीन गन्धकी ओर चला जायगा। यदि हम वीणाकी मधुर तान सुन रहे हों और नीचेसे नक्कारखाना गरजता हुआ निकल जावे तो वीणा एकदम भूल जायगी और श्रवण उधर लग जायँगे। इसी नियमके अनुसार अँगरेजी दुकानदार अपना सुन्दरसे सुन्दर भड़कीला और चमकीला माल बाहरवाली खिड़कियोंमें जिनको दृश्य खिड़कियाँ (Show windows) कहते हैं लगाता है। इसी नियम पर चलकर अध्यापक शिक्षणमें सफलता प्राप्त करता है। हमारे देशी दुकानदार अवधानको आकर्षित करनेवाले नियमोंको न समझकर बहुत हानि उठाते हैं। इन नियमोंका स्वाध्याय बड़ा लाभकारी है।

जैसा कि पूर्वमें वर्णन कर आये हैं कि अवधानके विषय बाह्य और आन्तरिक दो प्रकारके होते हैं, उसीके अनुसार उत्तेजक दो बाह्य और आन्तरिक स्रोतोंसे आता है। बाह्य उत्तेजक तो इंद्रियों द्वारा आता है और आन्तरिक मनमें उठता है। एक समाजसुधारकका मन सुधार-प्रश्नों पर लगा रहता है और एक विषयीका मन विषयभोगोंमें रत रहता है।

राजकाज करते हुए भी राजा जनक विदेह या जीवनमुक्त कहलाते थे। वैराग्यका उत्तेजक इतना प्रबल था कि संसारमें रहते हुए भी वे संसारसे पृथक रहते थे।

दूसरा नियम है अद्भुतता (Curiosity) नवीन अद्भुत वस्तुओंके प्रति अवधान खिंच जाता है। जब वायुयान लाहौरमें पहले पहल आया उन दिनों हम सब विद्यार्थी अपना कार्य्य छोड़कर अग्रवाल आश्रमके चौकमें जमा हो जाया करते थे और घंटोंतक उन यानोंको देखते रहते थे। जो लड़के कभी किसी खेल तमाशेमें नहीं जाते थे और जो कभी किसी बातके लिये भी अपना समय नहीं खोते थे वे पुस्तकके कीड़े अपना अपना पाठ और अन्य आवश्यक कार्य्य छोड़ आश्रमके आँगनमें खड़े रहते थे। आगरेका ताजमहल, मिश्रके मीनार और अमरीकाका नियागरा जल—प्रपात देखनेके लिये सहस्रों मनुष्य सहस्रों रुपया व्यय करके सहस्रों कोसोंसे आते हैं। हिन्दी संसारमें चन्द्रकान्ता एक अद्भुत उपन्यास है। एकबार आरम्भ करने पर बिना पूर्ण किये नहीं छोडा जाता। घटना इतनी अद्भुत है कि अवधान निरन्तर लगा रहता है। मदारियोंका तमाशा देखनेके वास्ते सैकडों व्यक्ति जमा हो जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिसे वे तमाशे यद्यपि कुछ नहीं परन्तु हम उनको नहीं कर सकते, इस लिये हमको बहुत आश्चर्यकारी प्रतीत होते हैं और हमारा अवधान तत्काल खिंच जाता है।

तीसरा नियम आकार (Size) का है। हमारा अवधान उन वस्तुओंकी तरफ आकर्षित हो जाता है जिनका आकार बड़ा होता है। और वे पदार्थ अधिक आकर्षक होते हैं जिनका आकार असाधारण होता है। घोड़ेकी अपेक्षा हाथी अवधानको अधिक आकर्षित करता है। मंदिर, मसजिद और गिरजाओंकी गुम्बजों पर और कारखानोंकी चिमनियों पर प्रथम दृष्टि पड़ती है। रोहतकके पास एक ग्राम है जिसका

नाम बोहर है । इस ग्राममें दो व्यक्ति असाधारण लम्बे हैं । जब कभी वे शहरमें आते हैं सब लोग उनको देखने लग जाते हैं । देहली दरबारमें महाराजा काश्मीरके कैम्पमें एक ६ फुटका मनुष्य था । उसको देखनेके लिये वहाँ सर्वदा भीड़ लगी रहती थी । व्यापारी व्यापार-गृह ऊँचे ऊँचे बनाकर बड़ा लाभ उठाते हैं । इससे उनकी दुकानका विज्ञापन स्वतः ही हो जाता है । सरकस, थियेटर, होटेल और अन्य पब्लिक स्थान असाधारण ऊँचे इसी नियमके अनुसार बनाये जाते हैं जिससे सर्वसाधारणको अनायास ही विदित हो जाय कि यह अमुक स्थान है ।

चौथा नियम अनुकूलता (Adaptation) का है । जो वस्तु हमारे साधारण जीवनके अनुकूल होती है उस पर हमारा अवधान सरलतापूर्वक लग जाता है और जो वस्तु हमारे साधारण जीवनके अनुकूल नहीं होती उस पर अवधान लगाना कठिन पड़ जाता है । एक विज्ञानवित् पंडितका ध्यान विज्ञानसंबन्धी बातों पर फौरन चला जायगा परन्तु उपन्यास, नाटक और काव्य विषयक वार्त्तालाप पर नहीं । एक बैरागीको नाच रंग पसन्द नहीं आवेंगे, हाँ यदि, कहीं हर-चरचा हो रही होगी तो वह तत्काल सुनने लग जायगा । एक कृषकका ध्यान वर्षा-संबन्धी बातों पर तत्क्षण चला जायगा और स्त्रियोंका मन वस्त्राभूषणोंकी तरफ दौड़ जायगा ।

पाँचवाँ नियम प्रयोजन (Motive) का है । जिस वस्तुसे हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है हम उस पर अधिक ध्यान देते हैं । विद्यार्थी अवस्थामें जिस विषय पर कभी ध्यान नहीं देते थे, जो विषय सर्वदा शुष्क प्रतीत होता था, जीवनसंग्राममें फँस कर वही विशेष प्रयोजनवश आकर्षक बन जाता है । बहुत लड़कोंको स्कूलमें गणितसे बिल्कुल रुचि नहीं होती परन्तु बड़ा होनेपर जब कार्य्य पड़ता है, किसी दुकान पर नौकरी करनेकी आवश्यकता होती है और गणितके बिना

गुजारा नहीं तो गणित रुचिकारक बन जाता है। पारितोषक प्राप्त करनेके लिये अरोचक विषय रोचक हो जाता है।

छठा नियम परिवर्तन (Change) का है। जो विषय परिवर्तित होते रहते हैं उन पर अवधान लगा रहता है। जो विषय बहुत समय पर्यन्त एक समान बना रहता है उससे अवधान थक जाता है। परिवर्तनसे अवधानकी थकावट दूर हो जाती है। जैसे यदि कोई विद्यार्थी मनोविज्ञान पढ़ता पढ़ता थक गया हो तो उसे चाहिये कि कोई अन्य विषय स्वाध्याय करे। और कुछ समयके पश्चात् मनोविज्ञान फिर पढ़ना प्रारम्भ कर दे। यदि मनोविज्ञान निरन्तर पढ़ता रहेगा तो एक विषयसे मन थक जायेगा। परन्तु यदि विषय बदलता रहेगा तो अवधानकी थकावट दूर हो जायगी और वह फिर इस योग्य हो जायगा कि मनोविज्ञानका पूर्ववत् स्वाध्याय कर सके। विद्यार्थी इस परिवर्तनके नियम पर चलकर स्वाध्याय अधिक कर सकते हैं और व्यापारी विज्ञापनपरिवर्तनसे अधिक लाभ उठा सकते हैं। योरपमें दरजी, लुहार, चमार आदि नित्य नवीन फैशन बना बना कर बाजारमें रखते हैं और खूब लाभ उठाते हैं। परन्तु हमारे भारतके शिल्पकार बाबा—आदमके समयसे पुरानी वस्तुयें बनाते रहते हैं इससे उन्हें हानि उठा उठा कर शिल्प छोड़ना पड़ता है और हल बैल सँभाल खेती करना होता है। हम प्रत्येक शिल्प-व्यापारमें पुराने ढर्रेकी वस्तुयें प्रयोग कर रहे हैं। यही कारण है कि संसारकी घुड़-दौड़में हमारा छकड़ा दलदलमे फँसा पड़ा है और संसारकी अन्य जातियाँ रेलों और वायुयानोंमें बैठ बैठ हजारों मील आगे बढ़ गई हैं।

सातवां नियम गति (Motion) का है। जो वस्तुयें स्थिर होती है उनपर ध्यान कम जाता है और ऐसी स्थिर वस्तुओं पर ध्यान बहुधा जाता ही नही। जो पदार्थ गतिशील हैं उन पर अवधान शीघ्र चला

जाता है । मेजिकल लालटेनसे वायस्कोपका तमाशा अधिक देखा जाता है, क्यों कि बायस्कोपमें चित्र चलते फिरते नजर आते हैं । यह अनुभव तो अधिकांश विद्यार्थियोंको होगा कि रातको जो प्रकाश चलता दिखता है उस पर ध्यान आकर्षित हो जाता है और यह प्रयत्न होने लगता है कि यह क्या वस्तु है ।

आठवें जिस बातकी आशा न हो (Unexpected) किन्तु वह हो जाय तो अवधान तत्काल खिंच जाता है । यदि एक व्यक्ति परदेश गया हो और उसके वापिस आनेकी कोई आशा न हो किन्तु वह अचानक दृष्टि आ जाय तो अवधान फौरन उसकी तरफ लग जाता है । इस नियमका प्रयोग व्यापारी विज्ञापनोंमें बहुत करते हैं । वे सर्व साधारणका ध्यान आ-कर्षित करनेके लिऐ ऐसे ऐसे चित्र और शीर्षक देते हैं कि जिनकी आशा न हो और अवधान तत्काल खिंच जाय--विज्ञापन विना पढ़े न रहा जाय ।

सबसे ऊँची श्रेणीका प्रयत्नशील अवधान (Voluntary attention) किसी विषय पर ध्यान लगाना है । हम किसी एक विषय पर अवधान लगा सकते हैं परन्तु उसपर स्थिर नहीं रह सकते । एक विषय पर अवधान निरन्तर स्थिर रखनेके लिये वह विषय ऐसा होना चाहिये जिसके सर्व अंग बराबर रोचक हों और जो अवधानको निरन्तर आकर्षित कर सकें । जो विषय रोचक नहीं होता उस पर अवधान लगानेमें प्रयत्न अधिक करना पड़ता है । यही कारण है कि अरोचक विषयसे मनुष्य शीघ्र उकता जाता है । अध्यापकोंको चाहिये कि शिक्षाको ऐसा रोचक बनावें कि विद्यार्थी आकर्षित रहें । अधिकांश अध्यापक स्वविषयको रोचक बनाने पर ध्यान नहीं देते और जब उनके विद्यार्थी परिणाममें अच्छे नहीं रहते या क्लासमें पाठ याद नहीं करते तो

अपनी त्रुटि न समझकर विद्यार्थियोंको मूर्ख और बुद्धूकी उपाधियोंसे भूषित करने लगते हैं।

एक विषय पर अवधान लगातार स्थिर रखनेके वास्ते जहाँ यह आवश्यकता है कि विषय लगातार रोचक हो वहाँ यह भी आवश्यक है कि एक विषय पर अवधान लगातार स्थिर रखनेका अभ्यास हो। यदि हमारा अभ्यास ऐसा है कि अवधान कभी इस विषय पर और कभी उस विषय पर फिरता रहता है एक विषय पर स्थिर नहीं होता तो हम एक बात पर अवधान निरन्तर नहीं लगा सकते। यदि हम एक विषय पर अवधान जमानेका लगातार प्रयत्न करते रहें तो हमारे अभ्याससे अवधान लगा रखनां सरल हो जावेगा। और जब एक बार एक बातका अभ्यास हो गया तो फिर उस विषय पर अवधानका खर्च कम हो जायगा। और हम स्व-अवधानको अन्य कार्य्योंमें लगा सकेंगे। चतुरता और कुशलता एक कार्य्यको बार बार करनेसे आती है। जब एक व्यक्ति पहले पहल बाइसिकल पर चढ़ना सीखता है तो उसको यन्त्र और अपनी प्रत्येक गति पर ध्यान रखना पड़ता है और डर बना रहता है कि कहीं गलती हो जाय और चोट लग जाय परन्तु पर्याप्त अभ्यास होने पर पूर्ववत् अवधानको कोई आवश्यकता नहीं रहती। फिर न बाइसिकलका और न अपनी गतिका खयाल रखना पड़ता है। यह सत्य है कि एक विचारको बार बार विचारनेसे उस विचारके विचारनेका अभ्यास हो जाता है और एक कार्य्यको बार बार करनेसे उस कार्य्यको करनेका अभ्यास हो जाता है। अभ्यासका प्रभाव हमारे जीवनपर बहुत पड़ता है। यदि हमारे अभ्यास अच्छे हैं तो हमारा जीवन अच्छा है और यदि हमारे अभ्यास खराब हैं तो हमारा जीवन खराब है। अच्छे अभ्यास उत्पन्न करने या स्थिर रखनेके लिये लगातार

अभ्यास रखना चाहिये और खराब अभ्यास दूर करनेके लिये खराब अभ्यासोंके स्थानमें अच्छे अभ्यास करने चाहिये ।

शिक्षाका प्रभाव अवधान पर बहुत पड़ता है । अवधानको ठकि पथ पर चलानेवाली शिक्षा है । अच्छे बुरेकी पहिचान शिक्षासे होती है । शिक्षाके विना यह ज्ञान नहीं हो सकता कि कौन विचार अच्छे हैं और कौन बुरे, और कौन अभ्यास अच्छे हैं और कौन बुरे । शिक्षाके अभावमें विचार संकीर्ण हो जाते हैं और बुद्धि संकुचित। भारतकी वर्तमान स्त्रियां इसका एक जीता जागता उदाहरण है । दुर्भाग्यवश हमारी समाजके इस अंगके बुद्धि और विचार इतने संकुचित हो गये हैं कि इन बेचारियोंको बालकोंके समान छोटी छोटी व्यर्थ बातों पर लड़ने झगड़नेके आतिरिक कोई अन्यकार्य्य नहीं और वस्त्राभूषणोंके सिवा अन्य कोई बिचार नहीं । शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे विचार संवर्धित हों और उनमें उदारता आवे । केवल रटा रटा कर तोते बनाना मनुष्यशक्तियोंका नष्ट करना है, शिक्षा देना नहीं । शिक्षापद्धति ऐसी होनी चाहिये जिससे मनुष्यशक्तियोंका विकाश भी हो और संसारका ज्ञान भी हो । आज कल सरकारी शिक्षा-यन्त्रमें बुद्धि पर सूचनाओंका इतना बोझा लादा जाता है कि बुद्धिवि-काशका स्थान ही नहीं । जिधर देखो जीवित विश्वकोष हाथोंमे प्रार्थना-पत्र लिये दफ्तरोंकी तरफ जाते दृष्टि आते हैं । स्वावलम्बनका नाम ही नहीं, वाणिज्य, व्यापार, कला-कौशलकी बात ही नहीं । हुजूर नौकरी, माई बाप नौकरी, यही शब्द सुन पड़ते हैं । ईश्वर रक्षा करे, इस गुलामीकी शिक्षासे कब तक गुजारा होगा ।

किसी एक विषय पर अत्यन्त अवधान लगानेसे अवधान शीघ्र थक जाता है । मेस्मेरेजम और हिप्नोटिजम करनेवाले इसी नियमका उपयोग करते हैं । जिस व्यक्ति पर प्रयोग करना होता है उसका अवधान एक

तरफ लगाया जाता है। अवधान थक जानेसे वह व्यक्ति एक प्रकारसे निद्रामें हो जाता है और फिर प्रयोगकर्त्ताके हाथोंमें कठ-पुतली बन जाता है।

किसी विषयकी बारीकियाँ समझनेके लिये उस विषय पर बार बार अवधान देनेकी आवश्यकता होती है। एक पुस्तक एक बार पढ़नेसे कुछ कुछ समझमें आजाती है दूसरी बार पाठ करनेसे कुछ और अधिक ज्ञात होता है यहाँ तक कि बार बार ध्यान देनेसे कठिनसे कठिन विषय भी सरल हो जाता है, और बारीकसे बारीक बात समझमें आजाती है। उदाहरणके लिये यही मनोविज्ञानका विषय है। विद्यार्थियोंको चाहिये कि इसको बड़े ध्यानपूर्वक बार बार पढ़ें। इसकी तमाम बातें समझमें आ जायँगी। जो स्थल कठिन प्रतीत हो उस पर अधिक ध्यान दें, वह अवश्य सरल हो जायेगा।

किसी बातकी आशाका प्रभाव भी हमारी मानसिक वृत्तियों पर पड़ता है। जिस बातके देखने, सुनने या अनुभव करनेकी आशा होती है वह बात अधिक सरलतापूर्वक देखी सुनी जाती है। जैसे यदि मुझे एक मित्रसे मिलनेकी आशा है और यदि वह मित्र आ जाय तो सहज ही पहिचाना जाता है। यदि मुझे किसी व्यक्ति विशेषसे मिलनेकी आशा नहीं तो किसी पर ध्यान नहीं जाता। अनेक मनुष्य सामनेसे गुजर जाते हैं किन्तु यह विदित नहीं होता कि कौन आया और कौन गया। प्रयोग-शालामें यदि विद्यार्थीको यह कह दिया जाय कि तारमें विद्युत आ रही है तो विद्यार्थी तारको गरम समझने लगेगा। सत्य तो यह होता है कि तारमें विद्युत नहीं होती। विद्युतका खयाल और विद्युतसे उत्पन्न होनेवाली गरमीकी आशा तारको गरम बना देती है। यदि हम किसी मित्रकी प्रतीक्षा कर रहे हों तो प्रत्येक व्यक्ति मित्र जान पड़ता है। भूतप्रेतोंके

माननेवाले मनुष्योंको रातके समय हर एक झाड़ भूत मालूम होता है । इस आशायुक्त अवधानसे अनेक भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं और बहुत बातोंकी व्याख्या जो पहले नहीं हो सकती थी इस सिद्धान्तको समझकर हो सकती है ।

अवधान पर विकारोंका प्रभाव भी उल्लेखनीय पड़ता है । जो विषय रोचक होते हैं अवधान उन पर ही लगता है । विषय चाहे जिस प्रकारका हो, शृंगार, वैराग, भय, करुणा इत्यादि कोई हो, रोचक होगा अवधान उसीमें लग जावेगा । उपन्यासों और नाटकोंमें जो स्थल भयानक और करुणाजनक होते हैं उन पर अवधान अधिक लगता है । बालक भयदायक पदार्थोंके प्रति टकटकी लगाये देखा करते हैं । अँगरेजीमें तो एक कहावत है कि (Saddest songs are the sweetest) अर्थात् जो कविता अधिकतम करुणाजनक होती है, वह अधिक रोचक प्रतीत होती है ।

अवधान कभी प्रयत्नहीन नहीं होता । अवधानमें कुछ न कुछ प्रयत्नकी मात्रा अवश्य रहती है । अवधान एक प्रकारसे संकल्पका अंग होता है और जिसको हम प्रयत्नशील अवधान कहते हैं वह तो संकल्प ही है ।

रोचक प्रश्नावली ।

(१) एक समयमे तुम्हारा अवधान कितने विषयो पर लग सकता है ?

(२) अँगरेज व्यापारी विज्ञापनों पर बहुत धन व्यय करते है। क्यो ?

(३) हम मनोविज्ञानकी पुस्तक बेचनेके लिये समाचारपत्रोंमे विज्ञापन देना चाहते हैं। वह विज्ञापन लिखो और बताओ तुमने ऐसा क्यों लिखा।

(४) विद्यार्थियोंका अवधान आकर्षित करनेके लिये एक अध्यापकको क्या करना चाहिये ?

(५) तुम एक विषय पर कितने समय तक ध्यान दे सकते हो ?

(६) एक वक्ता या उपदेशकमें क्या गुण होने आवश्यक है ?

(७) व्यापारमें सफलता कैसे मिल सकती है ?

(८) वार्त्तालाप करनेमें कई मनुष्य समझते है कि बोलनेका अधिकार उनको ही प्राप्त है अन्य किसीको नही। क्या ऐसा करना ठीक है ?

नवाँ अध्याय।
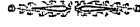
स्मृति।

हम गत अध्यायोंमें वर्णन कर आये हैं कि किस प्रकार इंद्रियोंद्वारा ज्ञान-तत्त्व एकत्रित किये जाते हैं। किसप्रकार ये तत्त्व मनको पहुँचाये जाते हैं और किस प्रकार मन अवधानपूर्वक इन तत्त्वोंको ग्रहण करता है। परन्तु यदि मनमें इन तत्त्वोंको जमा रखने, परिवर्तित करने, बनाने और पूर्वसंचित ज्ञानतत्त्वोंसे मिलाने और इच्छानुसार उत्पन्न करनेकी शक्ति न हो तो ज्ञानतत्त्वोंसे कोई लाभ न हो। इंद्रियों द्वारा जो ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष (Presentation) कहते हैं और इंद्रियोंसे रहित जो प्रत्यक्ष ज्ञानका स्मरण कल्पना और विचार होता है उसको पुनर्प्रत्यक्ष (Representation) कहते हैं। यदि प्रत्यक्षको पुनर्प्रत्यक्षमें परिवर्तित न किया जाय और यदि स्मृति, कल्पना और विचार द्वारा इंद्रियज्ञानको प्रयोगमें न लाया जाय तो केवल प्रत्यक्ष नितान्त व्यर्थ है। इधर आया उधर चला गया, न कोई प्रभाव है और न कोई प्रयोग।

पुनर्प्रत्यक्षके स्मृति (Memory), कल्पना (Imagination) और विचार (Thoughts) ये तीन सोपान हैं। इस अध्यायमें स्मृतिका वर्णन करते हैं।

मनमें पूर्व अनुभवकी न्यूनाधिक ठीक ठीक प्रतिमा उत्पन्न कर-नेको स्मृति कहते हैं। मैंने लाहोरका शालामार बाग देखा था। आज मैं उसी बागका चित्र रोहतकमें बैठा हुआ अपने मनमें खींच रहा हूँ। यही बागकी स्मृति है। स्मरण पूर्व अनुभवोंका ही होता है। भविष्य अनुभवोंका स्मरण एक असंगत बात है। जो प्रत्यक्ष मेरे जीवनमें हो चुके हैं मैं उनका ही

स्मरण कर सकता हूँ। जो वस्तु अबतक न देखी है न सुनी, उसका स्मरण नहीं हो सकता। स्मरण अपने ही अनुभवोंका हो सकता है, दूसरोंके अनुभवोंका नहीं। जो बात हम स्मरण करते हैं उस बातमें और उसके स्मरण किये हुए चित्रमें सादृश्य होना चाहिये। सूक्ष्म बातोंमें चाहे भेद हो परंतु मुख्य बातें समान होनी आवश्यक हैं।

अब हम यह विचार करेंगे कि स्मृतिमें किन किन शक्तियोंकी आवश्यकता है और स्मृति-कार्य्यके नियम क्या हैं। उत्तम स्मृति किसे कहते हैं और उसको प्राप्त करनेके क्या उपाय हैं।

स्मृतिके सम्बन्धमें पहली शक्ति यह होनी चाहिये कि जो नवीन संवेदन प्राप्त हो उसको हम अपने पूर्वसंचित ज्ञानमें मिला सकें। इसको पाचन (Assimilation) शक्ति कहते हैं। जैसे हम भोजन करते हैं और पाचन-क्रिया द्वारा उसको अपना बना लेते हैं उसी तरह हम जो संवेदन प्राप्त करते हैं उसको अपना बना लेते हैं। जैसे अनपचा भोजन हमारे शरीरके लिये लाभप्रद नहीं, उलटा हानिप्रद होता है, वैसे ही वह ज्ञान जो हमारे पूर्वज्ञानका अंग नहीं बनता किन्तु अलग रहता है हमारे मानसिक जीवनके वास्ते लाभप्रद नहीं, उलटा मन पर एक प्रकारका व्यर्थ भार हो जाता है। बहुतसे विद्यार्थी पुस्तक रट लेते हैं, पर उसके विषयको अपना नहीं बनाते और न समझकर स्वाध्याय करके अपना बनानेका प्रयत्न करते हैं। यदि उनसे कोई सीधा प्रश्न पूछ लिया जाय तो तत्काल शब्द शब्द उगल देंगे, किन्तु यदि वही प्रश्न कुछ हेरफेरसे किया जाय तो मुख ताकते रह जायँगे। परन्तु वह लड़का जिसने पुस्तकको समझकर पढ़ा है और विषयको अपना बना लिया है जटिलसे जटिल प्रश्नका भी उत्तर दे देगा।

जब मैं बी० ए० में पढ़ता था तब मेरे एक मित्रको त्रैमासिक परीक्षामें सिफर नम्बर मिले। वह भागा हुआ प्रोफेसरके पास गया और

कहने लगा कि "श्रीमानजीने मुझे सिफर क्यों दिया ? मैंने तो सब कुछ लिखा है, आप अपनी लिखाई कापीसे मिला लीजिए।" प्रोफेसरने उत्तर दिया कि "महाशय, इसी लिये तो मैंने सिफर दिया है कि तुमने मेरी कापीकी जुबानी नकल की है, समझा कुछ नहीं।" विद्यार्थी लज्जित हुआ और चुपचाप वापिस चला आया।

स्मृतिके सम्बन्धमें दूसरी शक्ति यह है कि जो नवीन अनुभव हो उसकी विभिन्नताको जान लेना। इसको भेद (Differentiation) शक्ति कहते हैं, अर्थात् संवेदनोंके भेदोंको समझना, पूर्व अनुभवों और नवीन अनुभवमें क्या भेद है यह ज्ञात होना और नवीन और प्राचीन ज्ञानकी तुलना करना कि नवीनमें क्या विशेषतायें हैं। बालक प्रथम नवीन ज्ञानको प्राचीनके साथ मिलाता है और फिर धीरे धीरे संवेदनके परस्पर भेदोंको जानने लगता है। बालक प्रथम यह जानने लगता है कि यह माता है, वह पिता है, फिर यह समझने लगता है कि यह माता नहीं, वह पिता नहीं, अर्थात् स्वमातापितासे अन्य मनुष्योंको अलग करने लगता है। आगे जैसे जैसे आयु बढ़ती है ये शक्तियाँ बढ़ती जाती हैं।

स्मृतिके सम्बन्धमें तीसरी शक्ति यह है कि हम जो अनुभव प्राप्त करें उससे उनमें पारस्परिक सम्बन्ध (Association) स्थिर हो जाय जिन बातोंमें परस्पर सम्बन्ध होता है उनके स्मरण करनेमें बड़ी सरलता होती है। जैसे भिन्न भिन्न मोती एक सूत्रमें बँधनेसे एक हो जाते हैं और जब एकको उठाया जाता है तो सब उठ आते हैं, उसी प्रकार भिन्न भिन्न अनुभव सम्बन्धसूत्रमें बाँध देनेसे जहाँ एक स्मरण हुआ कि दूसरा स्मरण हो आया करता है। यह शक्ति परमावश्यक है। इसका वर्णन विशेष रूपसे इसी अध्यायमें किया जायगा।

स्मृतिके सम्बन्धमें चौथी शक्ति यह है कि जिस वस्तुका प्रत्यक्ष प्रथम

हो चुका है मनमें उसकी मूर्ति पुनः उत्पन्न करना (Reproduction)। जैसे रामलालको मैंने कल देखा था। आज रामलाल नहीं है, परन्तु मैं उसका चित्र अपने मनमें उत्पन्न कर सकता हूँ।

स्मृतिके सम्बन्धकी पाँचवीं शक्ति बड़ी आवश्यक है। इसको पहिचान (Recognition) की शक्ति कहते हैं। यदि हममें यह शक्ति न हो तो स्मृति नहीं हो सकती। इस शक्तिसे प्रतिमा पहिचानी जाती है कि यह प्रतिमा या चित्र अमुक पूर्व अनुभवका है। मेरे मनमें रामलालका चित्र उत्पन्न होता है। यदि मैं उसको पहिचान न सकूँ कि यह रामलालकी प्रतिमा है जिसको मैंने अमुक स्थान पर देखा था तो यह रामलालका स्मरण नहीं हुआ, किन्तु रामलालकी कल्पना हो गई। यदि हम मनके चित्रोंको पूर्व अनुभवों पर न लगा सकें कि यह वहाँ देखा था, यह वहाँ सुना था, तो यह स्मरण करना नहीं हुआ। स्मरण करनेमें वस्तुका पहिचानना आवश्यक है कि यह अमुक वस्तु है जिसका अनुभव अमुक स्थान पर या अमुक समयमें हुआ था। यदि हम एक वस्तुको पहिचान नहीं सकते कि यह कौन चित्र है और किसका है तो हम यह नहीं जान सकते कि हमने इस वस्तुको पहले कभी प्रत्यक्ष किया था या नहीं। जिसका भूतकालमें प्रत्यक्ष न हो उसका स्मरण नहीं हो सकता। स्मरण होता है भूत अनुभूत बातोंका, वर्त्तमान और भविष्यतका नहीं।

स्मृतिके सम्बन्धकी छठी शक्ति भी कुछ कम आवश्यक नहीं। इन पाँचों शक्तियोंके प्रयोगके लिये यह आवश्यक है कि मन पर जो प्रभाव पड़े वह स्थिर रहे। यदि मन पर प्रभाव जैसे आवें वैसे चले जावें और कोई प्रभाव स्थिर न रहे तो कैसा स्मरण और किसका स्मरण? हमारे मनमें यह धारणा (Retention) शक्ति है कि उस पर प्रभाव स्थिर बने रहते हैं। मनमें इन प्रभावोंका एक कोष जमा हो जाता है जिसको

हम ज्ञान कहते हैं। जैसे अधिक धनवाला धनी कहाता है वैसे ही अधिक प्रभावोंवाला ज्ञानी या बुद्धिमान कहाता है। इन प्रभावोंसे जो भविष्य उपयोग लिया जाता है वह सब पर विदित है, उस पर विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। स्मृतिके विषयोंके लिये चित्र, मूर्ति या प्रतिमा शब्द् प्रयोग किया जाता है। इससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि स्मृतिके विषय मानसिक होते हैं, शारीरिक नहीं। प्रत्यक्ष शारीरिक होते हैं और प्रतिमा मानसिक। प्रत्यक्ष अधिक स्पष्ट होते हैं और प्रतिमा कम। प्रत्यक्ष उत्पन्न करनेमें इंद्रियाँ कार्य्य करती हैं और प्रतिमा उत्पन्न करनेमें इंद्रियाँ निष्क्रिय रहती हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष और प्रतिमा दोनों मनमें उत्पन्न होते हैं परन्तु प्रत्यक्षकी उत्पत्तिमें इंद्रियोंका कार्य्य विशेष होता है। यह भी समझ लेना आवश्यक है कि प्रतिमा प्रत्यक्षकी पूर्ण प्रतिमूर्ति नहीं होती। प्रत्यक्ष और प्रतिमामें मुख्य मुख्य बातें तो समान होती हैं किन्तु बारीक बातोंमें बहुत भेद पड़ जाता है। कुछ सूक्ष्म बातें स्मरणसे उतर जाती हैं और कुछ सूक्ष्म बातों पर पूर्व-संचित प्रभावोंका असर पड़ जाता है। कभी कभी आवश्यक अंग तक भूलमें पड़ जाते हैं। यदि कोई विद्यार्थी यह परीक्षा करना चाहे कि प्रत्यक्ष और उसकी प्रतिमामें कितना अन्तर हो जाता है तो उसको चाहिये कि एक छोटीसी कथा अपने एक मित्रको सुनावे और वह मित्र उस कथाको अपने किसी अन्य मित्रको सुनावे। इसी प्रकार कुछ मनुष्योंमें कथा दुहराये जानेके पश्चात् उसको फिर सुने तो पता लग जायगा कि उसकी असली कहानी और इसमें कितना अन्तर हो गया है। यही कारण है कि बातका बतंगड़ बन जाता है और असली बात परिवर्तित होते होते कुछ औरकी और बन जाती है और बहुधा ऐसा होता है कि असली बातका रूप बिल्कुल उलटा हो जाता है।

हमारे मनमें पूर्व अनुभूत अनुभवोंकी जो प्रतिमायें विद्यमान हैं उनका प्रभाव हमारे नवीन प्रत्यक्षोंपर बहुत पड़ता है। सत्य तो यह है कि हम वस्तु-

ओंको उनके वास्तविक रूपमें नहीं देखते किन्तु अपने रूपमें देखते हैं। न्यायाल-योंमें जाकर सुनो तो मालूम होगा कि दो व्यक्ति जिनकी सत्यतामें कोई संदेह नहीं किया जा सकता एक ही घटनाका नितान्त विरुद्ध वर्णन करते हैं। यह कहावत भी है कि बेईमानको सब बेईमान जान पड़ते हैं। जो कुछ पूर्व अनुभवमें आया था मनमें उसकी प्रतिमायें विद्यमान हैं। नवीन प्रत्यक्ष उनके संग मिल जाते हैं और उनके प्रभावमें आ जाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम क्या स्मरण करते हैं और क्या स्मरण नहीं करते। अधिकांश लोग यह समझते हैं कि स्मृतिका कोई नियम नहीं, मनमें किसी वस्तुकी स्मृति स्वयं हो जाती है। किन्तु यह ठीक नहीं। प्रत्येक प्रतिमा जो मनमें उत्पन्न होती है वह पूर्व अनुभवोंके आधार पर होती है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि जो प्रतिमा इस समय हमारे मनमें विद्यमान है वह उन प्रतिमाओंके आधार पर है जो एक क्षण पूर्व हमारे मनमें मौजूद थी। यथा—मेरे पास लाहोरसे एक मित्र-का पत्र आया। पत्रके पाठसे लाहोरमें रहनेवाले अन्य मित्रोंका स्मरण हो आया। फिर उन स्थानोंकी स्मृति हुई जहाँ जहाँ उन मित्रोंके संग गये थे। उन खानेकी वस्तुओं पर ध्यान चला गया जो उनके संग खाई थीं। ला-होरसे खयाल एकदम प्रयाग पहुँचा कि प्रयागमें अधिक स्वादिष्ट वस्तु खाई थी। प्रयागका स्मरण आते ही त्रिवेणीका ध्यान आगया कि वहाँ स्नान किया था, वहाँ एक दुर्ग था उसमें हिन्दू देवताओंकी विशाल मूर्तियाँ थीं; इत्यादि एक बातसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी स्मरण हो आती है। परन्तु यदि कोई यह जाननेका प्रयत्न करे कि अमुक वस्तुकी स्मृति किस प्रकार किन किन वस्तुओंकी स्मृति द्वारा आई तो अत्यन्त कठिन ही नहीं बहुधा असम्भव है। प्रतिदिन ऐसे ही अनेक अनुभव होते हैं। विद्यार्थियोंको चाहिये कि किसी एक अनुभवको लेकर देखें कि उन्हें सबसे पिछली बातका स्मरण कैसे हुआ।

हम स्मृतिके पथका पता नहीं लगा सकते। यही कारण है कि हम यह समझते हैं कि स्मृतिका कोई नियम नहीं। हमारे मनमें अनेक बातें ऐसी स्मरण हो आती हैं जिनकी बाबत हमको यह ज्ञान नही होता कि अमुक बात हमारे मनमें कैसे आई। परन्तु स्मृति बिल्कुल नियमानुकूल होती है। हमारे मनमें प्रतिमायें एक प्रकारके सूत्रमें बँधी हुई हैं। एक प्रतिमाके स्मरण होनेपर दूसरी स्मरण हो आती है। दूसरीसे तीसरी और तीसरीसे चौथी। स्मृतिके इस नियमको सम्बन्धका नियम (Law of Association) कहते हैं।

मन पर कोई प्रभाव अकेला नहीं पड़ता, सब प्रभाव सम्बन्धमें पड़ते हैं। मान लो कि किसी प्रकार एक व्यक्ति निर्जन वनमें पहुँच गया। जब उसकी आँख खुली तो उसने अपने सम्मुख एक पीपलके वृक्षको देखा। उस समय उसके मन पर एक पीपलके वृक्षका ही प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु उस स्थानका, उस अवस्थाका और उस समयका प्रभाव भी संग संग पड़ता है। यदि भविष्यमें उस व्यक्तिको किसी पीपलके पेड़का अनुभव हो जायगा तो उसको उस सारी स्थितिका स्मरण हो जायगा; वह अवस्था, स्थान और समय सब मनमें फिर जावेंगे। यही सम्बन्धका पहला और आवश्यक नियम है कि जो वस्तु समय या स्थानमें समीप होगी वह एक दूसरेको स्मरण करा देगी। इस नियमको समीपताका नियम (Law of Contiguity) कहते हैं।

जिन वस्तुओंका एक स्थान पर एक संग अनुभव हुआ था उनमेंसे यदि एक स्मरण हो आती है तो अन्य वस्तुओंका स्मरण भी हो आता है। यथा त्रिवेणीका स्मरण होनेसे उन स्वमित्रों, किश्तियों, मंगतों आदिका स्मरण हो आता है जो त्रिवेणी तट पर देखे थे। ऐसे ही जो वस्तुयें एक समयमें एक संग अनुभव होती हैं उनमेंसे एककी स्मृति अन्य

सबका स्मरण करा देती है । जैसे बाल्यावस्थामें अनुभूत किसी एक घट-नाकी स्मृति उन सब बातोंका स्मरण करा देती है जो उस आनन्ददायक समयमें हुई थी ।

परन्तु यह कोई आंवश्यक नहीं है कि कोई वस्तु वास्तवमें ही किसी समय या स्थानमें अनुभव की हो । जो वस्तुयें केवल हमारे मनमें ही एक स्थान या एक समयमें संग आती हैं वे भी एक दूसरीको स्मरण करा देती हैं । यथा—अर्जुन भीमका स्मरण आते ही कृष्ण, कर्ण, दुर्योधन आदि महा-भारतके सारे पात्रोंका रमरण हो जाता है । भरतका खयाल आते ही औरंगजेबकी याद आ जाती है । जिन बातोंको हम एक संग विचारनेके अभ्यासी होते हैं उनमेंसे एककी याद अन्य सब साथियोंकी यादका कारण बन जाती है । यदि हम वर्णमाला सीधी कहना चाहें—अ, आ, इ, ई,—तो सरलतापूर्वक कह सकते हैं, किन्तु यदि उलटी कहना चाहें—ह, स, ष, श—तो बड़ी कठिनाई आपड़े और पग पग पर भूल और झिझक उठानी पड़े । अधिकांश मनुष्योंके लिये तो ऐसा करना नितान्त असम्भव हो जाय ।

समीपताके नियममें कार्य्य-कारणकी समीपता भी सम्मिलित है । जैसे धूमको देखकर अग्निका स्मरण हो आता है । विवाहको देखकर संतानोंकी याद आ जाती है ।

सम्बन्धका दूसरा नियम है सादृश्य (Simitarity) । यदि दो पदार्थ रंग, रूप, गुण, आकार आदिमें सदृश हों तो एककी स्मृति दूसरेका स्मरण करा देती है । जैसे चित्रको देखकर चित्रित व्यक्तिका स्मरण हो जाता है । जैसे किसी व्यक्तिको देखकर उसकी शकल सूरतसे मिलते हुए अपने मित्रका खयाल आ जाता है । जैसे पूर्णचन्द्रको देख-कर स्वप्रियाके मुखचन्द्रकी स्मृति हो आती है । एक पंडितजीकी कथामें

एक गड़रिया खड़ा हुआ मूँड़ हिला रहा था । लोगोंने समझा यह बड़ा भक्त है । लोग उससे पूछने लगे कि "भाई, आपको कथामें बड़ा आनन्द आ रहा है, बताइये आपको क्या बात पसन्द आई ?" उसने उत्तर दिया कि "पंडितजीकी डाढ़ीको देखकर मुझे अपना एक बकरा स्मरण हो आया । मेरे बकरेके भी ऐसी ही डाढ़ी थी । पिछले साल उसे एक भेड़िया उठा ले गया ।"

सम्बन्धका तीसरा नियम है विरोध (Contrast)। जो वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध होती हैं वे एक दूसरेकी स्मृति दिला देती हैं । जैसे राजा और रंक, अमीर और फकीर, काला और गोरा, हलका और भारी, भरत और बिभीषण, राम और रावण ।

संबन्धके ये तीन मुख्य नियम हैं, किन्तु इन नियमोंके सहायक रूप कुछ और नियम भी हैं । हमारे मन पर एक संग अनेक प्रभाव पड़ते हैं । एक प्रभावके स्मरण होनेपर दूसरा कौनसा प्रभाव स्मरण क्षेत्रमें आवे, इसका निश्चय ये सहायक नियम करते हैं । मान लो कि हमारा वर्त्तमान विचार क है और इसके संग ग, घ, ट, ठ, त, थ आदि कई विचार हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि क के पश्चात् ग, घ आदिमेंसे कौन स्मरणक्षेत्रमें आवेगा । यह निश्चय निम्नलिखित सहायक नियमोंपर निर्भर है ।

सहायक नियमोंमें सबसे पाहिला और आवश्यक नियम दुहराना (Repetition) है । जो बात बार बार दुहराई जाती है उसका स्मरण बहुत सरलतापूर्वक होता है और उन बातोंका स्मरण कठिनतापूर्वक होता है जिनका ध्यान कभी कभी आता है । यदि ट, विचार ग, घ, की अपेक्षा अधिक दुहराया गया है तो क के पश्चात् ट, स्मरण होगा और अन्य ग, घ, आदि सब पीछे पड़े रहेंगे । वे दोहे, चौपाई और गीत सरलतापूर्वक याद आजाते हैं जिनको हम बहुधा

दुहराया करते हैं, परन्तु सुन्दर काव्य और गीत जो कभी कभी पढ़ते हैं स्मरण नहीं होते । जैसे गाड़ियोंके चलनेसे सड़कमें एक राही बन जाती है और तब अन्य गाड़ियोंका उस रास्तेमें चलना आसान होता है वैसे ही एक बातके बार बार दुहरानेसे मस्तिष्कमें एक प्रकारकी राही बन जाती है और इसीलिये उस रास्तेसे विचार आना सहल हो जाता है और उस वस्तुकी स्मृति सरलतापूर्वक आजाती है ।

दूसरा सहायक नियम संस्कारोंकी स्पष्टता (Vividness of impression) का है । जिस वस्तुका संस्कार मनपर स्पष्ट पड़ता है वह शीघ्र स्मरण हो आती है । हमारे जीवनमें अनेक घटनायें होती हैं, परन्तु सब याद नहीं रहतीं । कुछ घटनायें इतना स्पष्ट—इतना गहरा—असर करती हैं कि आयुपर्यंत नहीं भूलती । हम एक समय प्राचीन देहली देखने गये थे । वहाँ एक मंदिर योगमाया देवीके नाम पर बना है । उस मंदिरके निकट एक कूप है । हमारे एक युक्तप्रान्तीय मित्रका लोटा उस कूपमें गिर पड़ा । वह दृश्य मेरे लिये इतना प्रभाववान् हुआ कि जब कभी कहीं सैर करनेका विचार आता है वह दृश्य मेरी आँखोंके सम्मुख फिर जाता है, किन्तु अन्य अनेक घटनाओंका ध्यान जो मेरी यात्राओंमें हुई हैं कभी नहीं आता ।

तीसरा सहायक नियम है विकारात्मक दशा (A state of feeling)। जब मनुष्य आनन्दमें होता है तो कुछ और ही बात स्मरण आती है और जब शोकमें होता है तो कुछ और ही बात याद आती है ।

चौथा सहायक नियम है प्रयत्नशील अवधान (Voluntary attention) का प्रयोग । यदि हम यह प्रयत्न करें और अवधान लगावें कि हमारी स्मृति-शक्ति किस दिशामें लगे और किस दिशामें न जाय तो हम इस प्रयत्नमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकते हैं । इस

नियमका प्रभाव हमारी स्मृति पर बहुत पड़ता है, अतः इसका अभ्यास करना जहाँ आवश्यक है वहाँ लाभकारी भी है ।

पाँचवाँ सहायक नियम है अल्प-कालत्व (Recency)। अन्य अनुभवोंकी अपेक्षा जिस अनुभवको अल्पकाल हुआ होता है वह शीघ्र स्मरण हो आता है और जिस अनुभवको दीर्घकाल व्यतीत हो जाता है वह देरमें स्मरण होता है। परन्तु यह नियम उन अनुभवोंपर लागू होता है जो समान स्थितिमें होते हैं। यदि किसी अनुभवमें कोई अन्य विशेषता होगी तो यह नियम कार्य नहीं देगा। यथा दो अनुभव क और ख हैं। क अल्पकालिक अनुभव है और ख दीर्घकालिक, परन्तु ख अधिक प्रभाववाला है। उसका असर मन पर गहरा पड़ा है तो ख का स्मरण पहले होगा और क का पीछे। यदि ख में क से अधिक कोई विशेषता नहीं, तो ख की अपेक्षा क पहले स्मृति-क्षेत्रमें आयगा ।

छठा सहायक नियम है विचार-सम्बन्ध (Thought Relation)। यह एक बड़ा प्रायोगिक नियम है। जिन विचारोंको हम सम्बन्ध-सूत्रमें बाँध लेते हैं वे विचार शीघ्र स्मरण हो जाते हैं। इतिहासमें तिथियोंके संग बड़ी बड़ी घटनाओंका सम्बन्ध कर देते हैं और जब कोई तिथि याद आती है तो उसके संबन्धकी घटना तत्काल स्मरण हो आती है।

यदि हम अपने मानसिक जीवन पर एक दृष्टि डालें तो यह सरलतासे विदित हो जाता है कि हमारे मनमें जितने विचार और प्रतिमायें उठती हैं वे सब क्रमके अनुकूल होती हैं। एक विचार दूसरे विचारके संबन्धसे और एक प्रतिमा दूसरी प्रतिमाके संबन्धसे हमारे स्मरणक्षेत्रमें आती है। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या यह क्रम हमारी जागृत अवस्थामें ही विद्यमान रहता है या सुषुप्ति अवस्थामें भी पाया जाता है? संबन्धका नियम जागृतावस्थाके समान सुषुप्ति अवस्थामें भी कार्य्य

करता है या नहीं ? साधारणतया यह अनुभव होता है कि गाढ़ निद्रामें कोई विचार और प्रतिमा नहीं उठती। स्वप्नावस्थामें ऐसे बेजोड़ बेमेल कुछके कुछ विचार और प्रतिमायें मनमें उठती हैं कि संबन्धके नियमका कार्य्यकारी होना इस हालतमें असम्भव प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि जैसे जागृत दशामें विचार और प्रतिमायें मनमें उठती रहती हैं वैसे ही सुषुप्ति अवस्थामें भी विचार और प्रतिमायें मनमें उठती रहती हैं, परन्तु उस अवस्थाके विचार और प्रतिमायें स्मरण नहीं रहतीं। यदि हम दिनमें उठनेवाले विचारों और प्रतिमाओंको सन्ध्या समय स्मरण करने बैठें तो विदित हो जायगा कि हम कितनी बातोंका स्मरण कर सकते हैं।

जागृत अवस्थामें हम सचेत होते हैं और हमारा प्रयत्नशील अवधान कार्य्य करता रहता है और हमारी स्मृति पर इन दोनों कारणोंका प्रभाव बहुत पड़ता है। परन्तु सोनेकी दशामें हमारा प्रयत्नशील अवधान कार्य्य नहीं करता और चेतनता निष्क्रिय होती है। यही कारण है कि स्वप्न इतने बेमेल बेजोड़ विदित होते हैं। स्वप्नदशामें जो प्रतिमायें हमारे स्मरणक्षेत्रमें उत्पन्न होती हैं उनमें हम कोई क्रम नहीं रख सकते। कुछ विज्ञानपंडितोंका मत है कि स्वप्नदशामें मस्तिष्कके कुछ भाग सोते रहते हैं। जो भाग जागृत हैं उनके विचार स्वप्नरूपमें अनुभव होते हैं। जागृत दशामें सम्पूर्ण मस्तिष्क जागता रहता है, इसी लिये विचार क्रमानुसार, उठते हैं। परन्तु स्वप्नावस्थामें सारा मस्तिष्क जागता हुआ नहीं होता, इसी लिये विचार बेमेल बेजोड़ प्रतीत होते हैं।

अब हम यह विचार करते हैं कि एक अनुभवको धारण और पुनः उत्पन्न करनेमें किन किन बातोंकी आवश्यकता होती है। एक अनुभवको धारण करनेमें यह आवश्यक है कि उस अनुभवका संस्कार मन पर गहरा पड़ा हो और ऐसा न हो कि शीघ्र भूल जाय। तीन कारणोंसे मन

पर गहरा प्रभाव पड़ता है । प्रथम, प्रभावोत्पादक उत्तेजक प्रबल होना चाहिये । यदि उत्तेजक प्रबल न होगा तो प्रभाव गहरा नहीं पड़ेगा और मन उस बातको भूल जायगा । परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जो उत्तेजक लगातार अधिक समय तक प्रभाव करता है वही अधिक धारण किया जाता है । बहुधा ऐसा होता है कि अचानक पड़नेवाला प्रभाव अधिक समय तक स्मरण रहता है और साधारण लगातार पड़नेवाला प्रभाव शीघ्र भूल जाता है । दूसरे, अनुभवपर अवधान केंद्रित होना चाहिये । जो अनुभव सावधानतापूर्वक ग्रहण किया जाता है उसका प्रभाव गहरा पड़ता है और मन पर अधिक समय स्थिर रहता है । विद्यार्थी इसका प्रयोग करके जान सकते हैं कि जिस विषय पर वे अधिक ध्यान देंगे वह अधिक समय तक स्मरण रहेगा । तीसरे, किसी बातको बार बार दुहरानेसे मन पर गहरा असर पड़ता है और वह अधिक समय तक मनमें स्थिर रह सकता है ।

मनुष्योंमें धारणाशक्ति समान नहीं होती-भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें धारणाशक्ति भिन्न भिन्न होती है—किसीमें कम किसीमें अधिक । यद्यपि शिक्षा द्वारा अनेक न्यूनतायें पूरी हो जाया करती हैं परन्तु यह न्यूनता प्राकृतिक है-यह शिक्षा द्वारा भी पूरी नहीं हो सकती । दूसरे जहाँ भिन्न भिन्न मनुष्योंमें धारणाशक्ति भिन्न भिन्न होती है वहाँ एक ही मनुष्यमें भी भिन्न भिन्न विषयोंके लिये भिन्न भिन्न धारणाशक्ति होती है । किसीमें शब्दकी, किसीमें दृष्टि की, किसीमें वैज्ञानिक, और किसीमें ऐतिहासिक धारणा अधिक पाई जाती है । एक व्यक्तिको सुनी हुई बात अधिक स्मरण रहती है । दूसरेको देखी हुई बात अधिक स्मरण रहती है । तीसरा विज्ञानसम्बन्धी बातोंको अधिक याद रख सकता है । चौथा साहित्य-संगीत स्मरण कर सकता है । किसीको नाम अधिक याद रहते हैं और किसीको तिथियाँ खूब स्मरण रहती हैं । इत्यादि अनेक विषयोंके सम्बन्धसे भिन्न भिन्न मनुष्योंमें धारणा-

शक्ति भिन्न भिन्न होती है। इसी कारणसे स्मृतिके कई प्रकार हो गये हैं। यथा शब्दस्मृति, दृष्टिस्मृति, ऐतिहासिकस्मृति, वैज्ञानिकस्मृति आदि।

पाँच इंद्रियोंके सम्बन्धसे स्मृति पाँच प्रकारकी हो जाती है। हम देखते हैं कि कोई किसी इंद्रियविषयको याद रख सकता है और कोई किसी इंद्रियविषयको स्मरण कर सकता है। विद्यार्थी स्वस्मृतिकी परीक्षा करें कि वे किस इंद्रियके विषयकी अधिक धारणा रखते हैं।

कुछ मनुष्योंमें ऐतिहासिक स्मृति होती है। वे जिस घटनाको देखते सुनते या पढ़ते हैं उस घटनाकी प्रत्येक बात क्रमानुसार स्मरण रख सकते हैं। यह स्मृति अशिक्षितोंमें बहुधा पाई जाती है। वे यह नहीं समझते कि कौन बात याद रखनी चाहिये और कौन नहीं। उनके लिये सब समान आवश्यक हैं। ऐसे व्यक्तियोंसे यदि कोई घटना पूछी जाय तो वे प्रत्येक बातका विवरण देंगे कि यह घटना ऐसी दशामें हुई, ऐसे हुई और इस प्रकार हुई। न्यायालयोंमें जाकर देखो, अधिकांश साक्षी गवाही देते समय जबतक आवश्यक और व्यर्थ सब घटनाओंका विवरण अपनी शैलीके अनुसार न सुना दें तब तक वे कुछ नहीं कह सकते। यदि उनको बीचमें टोक दिया जाय तो वे भूल जाते हैं और फिर उन्हें आरम्भसे प्रारम्भ करना पड़ता है। मेरे एक बी० ए० मित्रकी ऐतिहासिक स्मृति इतनी बलवती है कि वे जिस घटनाका वर्णन करते हैं उसके देखनेकी कोई आवश्यकता शेष नहीं रहती। वे बारीकसे बारीक बातोंको स्मरण रख सकते हैं और फिर उनको क्रमानुसार कथन कर सकते हैं।

परन्तु कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो इतनी सूक्ष्म बातोंको स्मरण नहीं रख सकते। वे घटनाओंमेंसे साररूप सिद्धान्त निकाल लेते हैं और सूक्ष्म बातोंको उन सिद्धान्तोंके संग संबन्धित कर देते हैं। अतः उनको मुख्य बातें ही स्मरण रखनी पड़ती हैं और प्रत्येक छोटी बड़ी, मुख्य

गौण, आवश्यक अनावश्यक बातोंसे स्वस्मृति नहीं लादनी पड़ती । एक मुख्य बात याद आनेपर उसके संबन्धकी सब घटनायें स्मरण आ जाती हैं। इसको वैज्ञानिक (Scientific or Philosophical) स्मृति या दार्शनिक स्मृति कहते हैं। इस प्रकारकी स्मृति शिक्षितोंमें विशेष पाई जाती है । साहित्य, कला, विज्ञान और दर्शन आदिमें वैज्ञानिक स्मृति ही कार्य्य देती है । जो स्मृति सार सिद्धान्तोंको नहीं चुन सकती, जो स्मृति लाभकारी और व्यर्थ सब बातोंको लाद लेती है उस स्मृतिसे कला विज्ञान आदिमें कार्य्य नहीं चल सकता । इस लिये शिक्षाका सबसे बड़ा उद्देश्य वैज्ञानिक स्मृतिका पुष्टीकरण होना चाहिये । विद्यार्थियोंको जीवित कबाड़ियोंकी दुकान नहीं बनाना चाहिये ।

शक्तिके सम्बन्धसे स्मृति दो प्रकारकी होती है—स्वतःस्मृति और प्रयत्नशीलस्मृति । स्वतःस्मृति (Spontaneous Memory) वाला मनुष्य बातोंको सहज ही याद कर लेता है, उसको याद करनेमें उसे कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता । परन्तु सर्व विषयोंके लिये स्मृति समान नहीं होती। किसीकी गद्यमें और किसीकी पद्यमें स्वतःस्मृति होती है । कोई कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं कि एक बार श्रवण मात्रसे लम्बी लम्बी बातोंको शब्द शब्द याद रख सकते हैं। कोई कोई मनुष्य बड़ी बड़ी पुस्तकोंको एक बार स्वाध्याय करनेसे याद रख सकते हैं । इस प्रकारकी स्मृति स्वाभाविक होती है । यह शक्ति अभ्याससे नहीं आती। हमको यह चाहिये कि जो न्यूनाधिक स्मरण शक्ति हमारे अन्दर है उसका उपयोग यथाशक्ति अधिकसे अधिक अच्छा करें । यह कार्य शिक्षा और अभ्याससे हो सकता है ।

परन्तु अनेक घटनायें ऐसी होती हैं जो स्वतः स्मरण नहीं होतीं । उनके स्मरण करनेके लिये प्रयत्न करना पड़ता है । इसी लिये इस स्मृतिको प्रयत्नशीलस्मृति या इच्छितस्मृति (Volvntary or Intention-

al Memory) कहते हैं। जब किसी बातके याद करनेकी इच्छा होती है तो बहुत सज्जन सिर खुजाने लगते हैं और मनमें उसको स्मरण करनेका प्रयत्न करने लगते हैं—अर्थात् अपने अवधानको उस ओर लगाते हैं और ढूँढ़ते हैं। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं कि ऐसा प्रयत्न सफल ही हो। ढूँढ़ने पर कभी स्मरण हो जाता है और कभी नहीं। यदि खोजने पर एक मनुष्यको याद आजाती है तो उसकी स्मृतिको कार्यकारी या प्रायोगिक स्मृति (Ready Memory) कहते हैं। और जिसको खोजने पर भी बात याद न आवे उस स्मृतिको मंद स्मृति (Dull Memory) कहते हैं।

हम स्मृतिके विषयमें बहुत कुछ लिख आये हैं। यहाँ केवल दो बातें बतानी शेष हैं। ये दोनों आवश्यक हैं। पहली बात यह है कि अच्छी या बुरी स्मृति क्या होती है और दूसरी बात यह है कि स्मरण करनेके लिये उत्तम पद्धति क्या है।

स्मृतिका अच्छापन चार गुणों पर निर्भर है—(१) संख्या (२) लम्बी धारणा (३) स्पष्टता और (४) कार्य्यकारिता। उत्तम स्मृतिकी प्रथम अच्छाई यह है कि वह अनुभवोंको अधिक संख्यामें स्मरण कर सके। जो स्मृति जितने अधिक अनुभव स्मरण कर सकती है वह उतनी ही अधिक उत्तम कहाती है। परन्तु एक व्यक्ति अनुभवोंको अधिक संख्यामें याद तो कर लेता है किन्तु उनको शीघ्र भूल जाता है। ऐसी स्मृति भी अच्छी स्मृति नहीं। उत्तम स्मृतिके लिये यह आवश्यक है कि जो स्मरण किया जाय वह मन पर स्थिर रहे—भूल न जाय। इससे कोई लाभ नहीं कि इधर स्मरण किया उधर भुला दिया। उत्तम स्मृतिके लिये तीसरी बात यह है कि स्मृति स्पष्ट हो। यदि स्मरण तो किया और कुछ समय तक स्मरण रहा परन्तु अस्पष्ट, तो ऐसी स्मृति भी उत्तम नहीं। स्मृति स्पष्ट होनी चाहिए।

प्रतिमा स्पष्ट हो । स्मरण तो हुआ परन्तु जो प्रतिमा स्मृतिक्षेत्रमें आई वह सब मन्द स्पष्टताहीन, तो भी कुछ लाभ नहीं । उत्तमताके लिये इन तीनों गुणोंसे चौथा गुण अधिक आवश्यक और लाभकारी है। यह स्मृतिकी कार्य्यकारिता है। स्मृति ऐसी होनी चाहिये जो समयकी आवश्यकताको पूरी करे। अधिकांश मनुष्य बहुत कुछ याद कर लेते हैं । उनकी स्मृति एक प्रकारसे कबाड़ीकी दुकान बन जाती है—जहाँ प्रत्येक वस्तु है किन्तु वास्तवमें एक भी नहीं । आवश्यकता पड़नेपर घंटों ही खोज करो आवश्यक वस्तु मिलती ही नहीं । ऐसी स्मृतिसे कुछ लाभ नहीं । उत्तम स्मृति वह है जो समयानुसार कार्य्य दे । यदि समय पड़नेपर याद न आया तो याद किया न किया बराबर है ।

प्राचीन कालके मनुष्योंकी स्मृति वर्तमान कालके मनुष्योंकी अपेक्षा उत्तम थी । वेद शास्त्र आदि ग्रन्थोंको बने हजारों वर्ष बीत गये और लेखन-कला बहुत नवीन है । ये सब शास्त्र स्मृतिद्वारा ही प्राप्त हुए हैं । आज कल हम पुस्तकोंपर अधिक निर्भर रहते हैं और स्मृति पर बल नहीं देते । इसी लिये हमारी स्मृति प्राचीन मनुष्यों जैसी नहीं । आज भी बहुत से संस्कृत पंडित समग्र पुस्तक रट लेते हैं और विना पुस्तकके यादगीरीसे सुना देते हैं । मेरे एक मित्र हैं जो रामायणके बड़े प्रेमी हैं—उनको तुलसी-दासजीकी रामायण लगभग सारी कंठ है ।

हम बाल्यावस्थाकी अनेक घटनायें स्मरण कर सकते हैं परन्तु चार वर्षकी आयुसे पूर्वकी बातें हमें बहुधा स्मरण नहीं रहतीं । स्मृतिके सम्बन्धमें एक अद्भुत बात है कि जो मनुष्य डूबने लगे थे परन्तु भाग्यवश जीवित निकल आये वे कहते हैं कि जिस समय वे डूब रहे थे उस समय उन्हें जीवन भरकी तमाम घटनायें स्मरण हो आईं। वे छोटी छोटी व्यर्थ घटनायें भी याद आ गईं, जिनको बिल्कुल भूल गये थे और जो पहले कभी स्मरण नहीं

आई थीं। इससे सिद्ध होता है कि मन पर जो प्रभाव–छोटा या बड़ा–पड़ता है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता, किन्तु वह अन्य प्रबल प्रभावोंसे दबा पड़ा रहता है। परन्तु जिस समय मन अत्यन्त उत्तेजित होता है तो वे सब घटनायें स्मरणक्षेत्रमें एक प्रकारसे जाग उठती हैं। हमारे मनमें भूलनेका स्वभाव हमारे लाभके लिये है। यदि मनमें भूलनेकी शक्ति न हो, यदि प्रत्येक घटना–सार्थक और व्यर्थ–स्मरणक्षेत्रमें सर्वदा बनी रहे तो मन एक अच्छा खासा पागलखाना बन जाय। यदि हम अपने घरमें अच्छी, बुरी, उचित, अनुचित, सब वस्तुयें भरी रहने दें और अनुचित व्यर्थ चीजोंको बाहर निकालकर न फेंकें तो हमारे घरकी क्या दशा हो। सुन्दरसे सुन्दर मंदिर भी गधोंकी चरागाह बन जायँ। अतः व्यर्थ बातोंका भूल जाना उत्तम स्मृतिके लिये आवश्यक है।

अब हम स्मृतिके संबन्धमें सबसे आवश्यक विषयका उल्लेख करते हैं कि हम अपनी स्मृतिको किस प्रकार उत्तम बना सकते हैं। साधारण मनुष्य जब किसी बातको याद रखना चाहता है तो उस बातको जुबानी रट लेता है। किन्तु यह उत्तम पद्धति नहीं। जुबानी रटना स्मृतिका सबसे निकृष्ट साधन है। इस साधनसे मनपर बोझ अधिक पड़ता है और लाभ कम होता है। किसी अनुभवको स्मरण रखनेकी यह एक अस्वाभाविक पद्धति है। इससे स्मृति शक्तिपर प्रभाव बलात् जमाये जाते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि रटनेसे बिल्कुल कार्य्य न लिया जाय। आवश्यकतानुसार इस साधनका प्रयोग भी किया जा सकता है और विशेष कर बाल्यावस्थामें। परन्तु किसी बातको स्मरण रखनेके लिये स्वाभाविक साधन अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

स्वाभाविक नियमोंपर चल कर हम उत्तम स्मृति प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु व्यक्तियोंमें शक्ति भिन्न भिन्न होती है–किसीमें अधिक किसीमें कम।

अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी सीमाके बाहर नहीं जा सकता और सब मनुष्य समान स्मृति प्राप्त नहीं कर सकते । दूसरे स्मृति पर आयुका असर पड़ता है । एक विशेष आयुतक यह शक्ति बढ़ती है और फिर बढ़नी बन्द होकर पुष्ट होती रहती है । वृद्धावस्थामें अन्य शक्तियोंके संग स्मृति भी क्षीण होने लग जाती है । बालक नवीन भाषा या अन्य नवीन बात सीखनेमें अधिक समय लेते हैं, परन्तु एक युवा पुरुष जो प्रथम ही दो तीन भाषा जानता हो नवीन भाषा सरलतापूर्वक सीख लेता है ।

यदि हम उत्तम स्मृति स्वाभाविक साधनोंके प्रयोग द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं तो उसी पूर्वपरिचित सिद्धान्तपर ध्यान देना होगा कि 'स्वस्थ मन स्वस्थ शरीरमें रहता है'। समग्र मानसिक जीवनके लिये यह सिद्धान्त परमावश्यक है । जिसका शरीर स्वस्थ नहीं उसका मन भी स्वस्थ नहीं । जिसका शरीर खराब उसका मन भी खराब । जिसको खाँसी, जुकाम बुखारसे ही अवकाश नहीं वह अन्य बातें कहाँ स्मरण रख सकता है ? जैसे एक शिल्पकारके लिये औजार होते हैं वैसे ही मनके लिये शरीर । जैसे एक शिल्पकार खराब औजारोंसे कार्य्य सिद्धि नहीं कर सकता वैसे ही मन अस्वस्थ शरीरसे कार्य्य सिद्धि नहीं कर सकता । अतः मानसिक शक्तियोंकी पुष्टिके लिये शरीरकी पुष्टि प्रथम आवश्यक है । विद्यार्थियोंको शरीररक्षापर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

उत्तम स्मृतिका सर्वप्रधान और आवश्यक साधन यह है कि जिस विषयका अनुभव करो उसे सावधानतापूर्वक करो । जिस अनुभवके करनेमें अधिक अवधान लगाया जाता है उसका प्रभाव मन पर गहरा पड़ता है और उसकी प्रतिमा स्पष्ट होती है, अतः उसका स्मरण भी सरलतया हो जाता है । जिन बातोंकी तरफ हमारा अवधान नहीं उनका प्रभाव हमारे मन पर नहीं पड़ता । इस लिये जो विद्यार्थी उत्तम स्मृतिके

इच्छुक हैं उनको सबसे प्रथम इस उपायका अवलम्बन करना आवश्यक है। उनको चाहिये कि जिस विषयका अनुशीलन करें उस पर ध्यान दें। जितना अवधानपूर्वक किसी विषयका प्रत्यक्ष किया जायगा उतना ही अधिक वह स्मरण रहेगा। मनपर स्थायी प्रभाव डालनेका सबसे उत्तम साधन अवधान है। जो इस साधनका प्रयोग करते हैं उनके अनुभव बड़े स्पष्ट और स्थायी होते हैं। वे प्रत्येक बातको बड़ी उत्तमतासे स्मरण कर सकते हैं।

जहाँ विषयका स्वाध्याय करनेके लिये उसपर अवधान लगाना आवश्यक है वहाँ विषयका भली प्रकार स्वाध्याय भी कम आवश्यक साधन नहीं। यह उत्तम स्मृति प्राप्तिका दूसरा साधन है कि प्रत्येक बातका अनुशीलन अच्छी तरह हो। ऐसा नहीं होना चाहिये कि एक बात आधी अनुभव की और आधी छोड़ दी। कुछ इधर और कुछ उधरमें स्मृति ठीक नहीं होती। एक बात लो, उसके मोटे बारीक सब अंगोंका स्वाध्याय करो। ऐसा करनेसे उस अनुभवका प्रभाव मन पर स्थायी पड़ता है और वह बात शीघ्र स्मरण हो आती है। अधूरी बात सर्वदा खराबी करती है और यह कहावत याद दिलाती है कि "न खुदा ही मिला न विसाले सनम, न इधरके रहे न उधरके रहे।"

उत्तम स्मृतिका तीसरा साधन पूर्वसंचित और नवीन अनुभवोंसे सम्बन्ध करना है। जो बात हमारे मनमें संबन्धहीन अकेली पड़ी रहती है उसका स्मरण करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जिन बातोंसे संबन्ध हो जाता है वे एक दूसरीको स्मरण करानेमें सहायक बन जाती हैं। संबन्धके कारण नवीन बात नवीन नहीं रहती, वह हमारे मानसिक जीवनका एक अंग हो जाती है। यदि हम कोई नवीन साहित्य, कला या विज्ञान सीखना चाहें तो उस विषयको पूर्वपरिचित सिद्धान्तोंसे संबन्धित करना

आवश्यक है। ऐसा करनेसे विषय शीघ्र हमारा बन जायगा और हमारे पास ज्ञानका एक बड़ा भंडार जमा हो जायगा। परन्तु यदि हम किसी बातको अकेला अलग छोड़ देंगे तो स्मृतिसे वह उतर जायगी।

उत्तम स्मृतिकी सिद्धिके लिये ये तीन मुख्य साधन हैं कि विषय पर पूर्ण अवधान लगाया जाय, उस विषयका अनुशीलन पूर्णतया किया जाय और उस विषयको स्वज्ञानका एक अंग बना लिया जाय। इन मुख्य साधनोंके अतिरिक्त कुछ गौण साधन भी हैं जिनका प्रयोग उत्तम स्मृतिकी प्राप्तिमें बड़ा सहायक हो सकता है।

(१) जो कुछ स्वाध्याय किया जाय वह समझ कर किया जाय। बिना समझे किसी बातका रट लेना ठीक नहीं। इससे स्मृति स्थिर नहीं रहती और वह बात शीघ्र भूल जाती है। क्यों कि बिना समझे बात अपनी नहीं बनती—वह हमारे ज्ञानका अंग नहीं होती, किन्तु अलग अकेली पड़ी रहती है।

(२) किसी विषयको स्मरण करनेके लिये थोड़ा थोड़ा लेना चाहिये। एक बार शक्तिसे बाहर कार्य्यका बोझ उठाना हानिकारक होता है। थोड़ा थोड़ा याद करनेसे शीघ्र याद होता है और अधिक समय तक स्मृतिमें बना रहता है। एक दम अधिक बात स्मरण करनेसे वे शीघ्र भूल जाती हैं।

(३) विषयका प्रत्यक्ष एकसे अधिक इंद्रियों द्वारा किया जाय। इससे मन पर कई गुना अधिक प्रभाव पड़ता है और संस्कार स्थायी रहता है। जिस विषयको पढ़ो जोर जोरसे पढ़ो। इस प्रकार दृष्टि और श्रवण दो इंद्रियों द्वारा मन पर प्रभाव पड़ता है और स्मृतिमें विषय स्थायी हो जाता है।

(४) एक अनुभवको स्मृतिक्षेत्रमें स्थायी करनेके लिये और उसको सरलतापूर्वक स्मरण करनेके वास्ते उस विषयके नकशे तथा चित्र बनाने और

उदाहरण सोचने चाहिये। पुस्तकों या अध्यायोंको पढ़कर उनकी मुख्य मुख्य बातें चुन लो और उनके संक्षेप बना लो। मुख्य मुख्य बातोंके स्मरणसे अन्य छोटी छोटी बातें भी याद आजाती हैं और एक बात स्मरण भी शीघ्र हो जाती है।

(५) एक बातको बार बार दुहराते रहो। दुहरानेसे बात भूलती नहीं किन्तु मन पर जमी रहती है। दुहरानेसे मन पर प्रभाव गहरा हो जाता है। और प्रभाव जितना गहरा होगा उतना ही स्थायी होगा।

(६) एक विषयपर वार्त्तालाप करना भी उस विषयकी स्मृतिमें बड़ा सहायक होता है। वार्त्तालाप करनेसे एक तो विषय नया होता रहता है, दूसरे उसके संबन्धकी मुख्य और गौण सब बातें दुहराई जाती हैं और तीसरे उसके अनुकूल और प्रतिकूल युक्तियोंके कथनसे विषय स्पष्ट हो जाता है। इंग्लैण्डके प्रसिद्ध विद्वान् लार्ड बेकनका कथन है कि स्वाध्यायसे सूचनायें बढ़ती हैं, लिखनेसे यथार्थता आती है और वार्त्तालापसे विषयपर शासन हो जाता है। इच्छित बात स्मरण करनेका वार्त्तालाप एक बड़ा सफल साधन है।

इस अध्यायका अन्त करते हुए हम एक बात पर विशेष रूपसे पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं और वह परिश्रम है। परिश्रम सर्व-सिद्धियोंका मूल मन्त्र है। इस मूल मन्त्रके जाप बिना कोई बात सिद्ध नहीं हो सकती। यह महा साधन है जिसके द्वारा सब कुछ सिद्ध हो सकता है। स्मृतिको बनानेके लिये भी परिश्रमकी आवश्यकता है। परिश्रमके बिना उपर्युक्त साधन भी सिद्ध नहीं हो सकते। 'परिश्रम और निरन्तर परिश्रम किन्तु युक्तियुक्त परिश्रम' यही महा साधन है और सर्वसिद्धिदाता है। इसीका प्रयोग अहर्निश करना आवश्यक है।

रोचक प्रश्नावली ।

(१) क्या तुम एक प्रत्यक्षकी ठीक प्रतिमा स्मरण कर सकते हो ?

(२) क्या तुम्हारी स्मरणकी हुई प्रतिमामें ऐसी भी बातें पाई जाती हैं जो प्रत्यक्षमें नहीं थीं ? यदि पाई जाती हैं, तो क्यों ?

(३) कई मनुष्योंमें जानेसे, एक कहानी क्यों बदल जाती है ?

(४) एक विषयको स्मरण करनेके लिये कौन साधन अच्छा है (क) एक पुस्तकको बार बार पढ़ना या एक बार पढ़कर उसके संक्षेपको बार बार दुहराना ? (ख) एक समग्र पुस्तकको बार बार दुहराना या एक एक अध्याय बार बार दुहराना ?

(५) क्या कारण है कि रेलगाड़ियोंके भिड़नेकी एक घटनाके समाचार पर अन्य ऐसी ही घटनायें एक संग हो जाती हैं ?

(६) तुम्हारी दृष्टिस्मृति बलवान् है या शब्दस्मृति ?

(७) तुम्हारी स्मृति ऐतिहासिक है या वैज्ञानिक ?

(८) अपने ग्रामका वर्णन करो ।

(९) आगे लिखी घटनाओंसे तुमको क्या याद आता है—(१) बादलोंमें बिजलीकी चमक (२) मूसलाधार वर्षा (३) पूर्ण चन्द्र (४) सन्ध्याके रंग बिरंगे बादल ।

(१०) कुछ विद्यार्थी अपना कार्य प्रतिदिन कर लेते हैं और अन्य प्रतिदिन नहीं करते, किन्तु परीक्षाके समय दो तीन मास परिश्रम करते हैं । इनमेंसे कौन कार्यशैली उत्तम है ? तुम किस शैलीसे अपना कार्य करते हो ?

दसवाँ अध्याय ।

कल्पना ।

गत अध्यायमें हम पुनर्प्रत्यक्षके प्रथम सोपान स्मृतिका वर्णन कर आये हैं। इस अध्यायमें पुनर्प्रत्यक्षके दूसरे सोपान कल्पना (Imagination) का विवरण देते हैं। स्मृति पूर्व अनुभूत प्रत्यक्षोंकी न्यूनाधिक ठीक ठीक प्रतिमा होती है। स्मृतिका संबन्ध केवल भूतकालसे होता है, भविष्यत्कालसे इसका कोई संबन्ध नहीं। परन्तु कल्पनाका कार्य्यक्षेत्र स्मृतिसे विस्तृत है। इसके सम्मुख ऐसा ही भूत और ऐसा ही भविष्यत्। यह भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालोंपर लागू होती है। स्मृति अपने ही अनुभवोंकी हो सकती है।—दूसरोंके अनुभवोंका स्मरण नहीं हो सकता, परन्तु कल्पना अपने और पराये सब अनुभवोंकी हो सकती है।

कल्पना एक ऐसी शक्ति है जो ज्ञान-तत्त्वोंको छिन्न भिन्न करके परिवर्तित कर देती है और फिर उनको नवीन संबन्धमें जाहिर करती है। यह शक्ति बड़ी विचित्र है। यह प्रत्यक्षोंको लेकर उनको तोड़ मरोड़ देती है और एक नवीन वस्तु घड़ देती है। यह भिन्न भिन्न प्रत्यक्षोंसे भिन्न भिन्न तत्त्व अलग करके एक नवीन संगठन बना देती है। नवीन युगकी सृष्टि करना इसीका कार्य्य है। कालिदास और तुलसीदासके महाकाव्य, भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्रके नाटक, बंकिम और टागोरके उपन्यास, बंकिमका चौबेका चिट्ठा और रेल, तार, मशीन आदि इस ही कल्पना-शक्तिके सब कार्य्य हैं।

स्मृति सम्बन्धके नियम (Law of Association) के अधीन कार्य्य

करती है, परन्तु कल्पनाका कार्य्यारम्भ विच्छेद (Dissolution) से होता है। नवीन विचित्र वस्तु बनाना विच्छेदके बिना नहीं हो सकता। नवीन वस्तु घड़नेके वास्ते विच्छेद परमावश्यक है। जैसे मेज या कुरसी बनानेके लिये एक खाती प्रथम लकड़ीको चीर फाड़ कर अलग अलग टुकड़े कर देता है और फिर उन टुकड़ोंको जोड़ कर एक नवीन वस्तु बना लेता है, वैसे ही नवीन घड़न्तके वास्ते कल्पना प्रत्यक्षोंको विच्छेद करके तत्त्व अलग अलग कर देती है और फिर उन तत्त्वोंको जोड़ कर नवीन सृष्टि रच लेती है। भारत, ग्रीस और रोमके देवी देवताओंकी कथायें पढ़ो। कल्पनाने कैसी विचित्र दैवी सृष्टि रची है! पढ़ कर दिल फड़क उठता है। नरसिंहावतार, पंखोंवाली सुंदरियाँ, सींगोंवाले देव, तीन सूँड़ वाला ऐरावत हस्ती, चार भुजाओंवाली दुर्गा इत्यादि अनेक उदाहरण हैं। कल्पना-शक्तिका ज्ञान करनेके लिये कि यह क्या क्या कर सकती है पुराणोंका और विशेष कर जैनियोंके पुराणग्रंथोंका अवश्य अवलोकन करना चाहिये।

कल्पनाका प्रभाव प्रत्यक्ष और स्मृतिपर बहुत पड़ता है। एक वस्तुके प्रत्यक्षमें कल्पनाका भाग भी कुछ कम नहीं होता। मेज़पर एक लैम्प रक्खा है और मैं उसको प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। परन्तु लैम्पका अर्ध भाग मेरी दृष्टिके सामने है और अर्ध भाग दृष्टिसे परे। अतः वास्तविक प्रत्यक्ष अर्ध भागका ही होता है और शेष अर्ध भाग कल्पना पूर्ण करती है। ऐसे ही स्मृतिपर भी कल्पना अपना प्रभाव डालती है। जिस रोचक वस्तु, मकान, नगर आदिको एक बार देख लेते हैं उसका चित्र हमारे मनमें बना रहता है। जब हम उसी वस्तुको दूसरी बार देखते हैं तो अपने चित्रके अनुसार नहीं पाते, या तो वह वस्तु अधिक सुन्दर प्रतीत होगी या कम, कुछ न कुछ भेद अवश्य हो जाता है। विद्यार्थियोंको चाहिये कि वे भारतके किसी प्राचीन नगर, मंदिर या मसजिदको देखें और फिर छः मासके पश्चात् वहाँ जायँ और अपने नवीन अनुभवसे पूर्व अनुभवकी तुलना करें।

कल्पनाके तीन प्रकार हैं। इन तीनोंके नाम विधायक, उत्पादक और आदर्श हैं। विधायक कल्पना (Constrictive Imagination) को ज्ञानात्मक कल्पना भी कहते हैं । इस कल्पनाका कार्य्य नवीन ज्ञान-प्राप्तिमें सहायता देना है। इसकी सहायताके बिना कोई नवीन ज्ञान नहीं प्राप्त होता। कोई बात हो, जबतक मनमें उसका चित्र नहीं खिंच जाता तबतक उसका ज्ञान नहीं होता। वस्तुओंके केवल नाम रटनेको ज्ञान नहीं कहते। भूगोल, इतिहास, गणित आदि कोई विषय हो यदि एक विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिये स्थानों, पहाड़ों, नदियों आदिके केवल नाम रट लेता है, इतिहासमें राजाओंके नाम, लड़ाइयोंकी तिथि और गणितमें सिद्धान्त घोट लेता है तो वह परीक्षामें चाहे उत्तीर्ण हो जाय परन्तु जिसको वास्तविक ज्ञान कहते हैं वह उसे नहीं हो सकता। वास्तविक ज्ञानप्राप्तिके वास्ते यह आवश्यक है कि जो बात सीखी जाय वह समझ कर सीखी जाय, उसका चित्र कल्पना द्वारा मनमें खींच लिया जाय, तोतेके समान केवल रट लेनेसे क्या लाभ ?

वैज्ञानिक अन्वेषणोंमें यह विधायक कल्पना बड़ी सहायता देती है। न्यूटनने सेवका गिरना देखकर आकर्षणका नियम ज्ञात किया। फ्रेंकलिनने विद्युतके सिद्धान्त मालूम किये। जगदीशचन्द्र वसुने वृक्षोंमें जीवन विदित किया। इत्यादि अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त इसी कल्पना द्वारा मालूम हुए। विज्ञानवेत्ता भिन्न भिन्न घटनाओंको देखकर उनके कार्य करनेके नियमकी कल्पना करता है और फिर अपनी कल्पनाकी परीक्षा करके यह निश्चय करता है कि मेरी कल्पना सत्य है या नहीं। यदि हममें यह ज्ञानात्मक कल्पना शक्ति न हो तो हम घटनाओंको देखते हुए भी किसी सामान्य सिद्धान्त (General Law) को प्राप्त नहीं कर सकते। जानवरोंमें यह शक्ति नहीं पाई जाती। यदि कुछ होगी भी तो अत्यन्त

न्यून । एक कुत्ता दो मनुष्यों और दूसरे दो मनुष्योंको सामने खड़ा देख कर यह जान सकता है कि ये चार मनुष्य हैं, परन्तु वह यह कभी नहीं जान सकता कि दो और दो चार होते हैं । दो और दो रोटियोंको देखकर कुत्ता जान सकता है कि ये चार रोटियाँ हैं किन्तु वह दो और दो चारके सामान्य सिद्धान्तको कभी नहीं समझ सकता । यह शक्ति केवल मनुष्यमें है जिसने गणित जैसे काल्पनिक विज्ञानकी रचना की है ।

उत्पादक कल्पना (Creative imagination) को प्रायोगिक कल्पना भी कहते हैं । उत्पादक कल्पनाका प्रयोग प्रतिदिन होता है । यह हमारे दैनिक कार्योंमें बड़ी सहायक होती है । रेल, तार, मोटरकार, कातने, बुनने और सीने आदिके यन्त्र, उपन्यास, नाटक और काव्य सब इसीकी शक्तिके फल हैं । यह कल्पना सर्वदा इस चिन्तामें रहती है कि किस प्रकार वस्तुव्यय कम किया जाय और लाभ अधिक उठाया जाय । प्राचीन कालमें एक पुस्तक महीनोंमें लिखी जाती थी । हजार हजार पाँच पाँच सौ रुपये उसका मूल्य होता था । बड़े बड़े सेठ साहूकार और राजा लोग उसे खरीद सकते थे, परन्तु आज उत्पादक कल्पनाके कारण छापेके यन्त्र बन गये और वर्षोंका काम मिनटोंमें होने लग गया । दो तीन घंटोंहीमें एक ग्रन्थकी सहस्रों प्रतियाँ छप जाती हैं और सस्ते दाम होनेसे उनसे सर्व साधारण लाभ उठाते हैं । इस प्रकारके साधन निकालना जिनसे परिश्रम कम और प्राप्ति अधिक हो, इसी कल्पनाके कार्य हैं । रामायण, महाभारत, शकुंतला और आँखकी किर-करीकी सृष्टि करके आनन्द फैलाना इसीका कार्य है । जितने सुख और आनन्दके साधन जगतमें विद्यमान हैं और बनते जाते हैं वे सब उत्पादक कल्पनाशक्तिद्वारा प्राप्त हुए हैं ।

उत्पादक कल्पना बाल्यावस्थामें बहुत कार्य्य करती है । लड़के और लड़कियाँ इस कल्पना द्वारा जड़ वस्तुओंको चेतन जीवधारी बना लेते हैं

और उसी कल्पनामें मस्त होकर खेलते फिरते हैं। लड़के लाठियोंके घोड़े बना लेते हैं और तमाम दिन चढ़े चढ़े गलियोंमें फिरते हैं। लड़कियाँ कपड़ेकी गुड़ियाँ बना लेती हैं और बड़े चावसे उनके विवाह करती हैं, संतान उत्पन्न कराती हैं, सुलाती हैं, भोजन खिलाती हैं और इसी कल्पनामें मस्त रहती हैं। लाठीके घोड़ेपर सवार होकर एक छोटा बालक उतना ही आनन्दित होता है जितना वास्तविक घोड़े पर एक फौजी जनरल। कपड़ेकी गुड़ियोंका विवाह करती हुई एक लड़की उतनी ही आनन्दित होती है जितने उसके विवाह पर उसके मा-बाप आनन्दित होते हैं। बाल्यावस्थाका एक बड़ा भाग ऐसे ही काल्पनिक संसारमें गुजरता है। बालक प्रत्येक वस्तुको कल्पनादृष्टिसे देखता है और वस्तु उसको बड़ी अद्भुत प्रतीत होती है। बालक ऐसी कहानियोंसे बहुत आनन्दित होते हैं जिनमें कल्पना खूब कार्य्य करती है। इनको देवों, परियों और जानवरोंकी कथायें बहुत प्रिय होती हैं। बालक घरमें किसी वृद्ध स्त्रीके चारों ओर सन्ध्या समय घिर जाते हैं और देव–परियोंकी कहानियाँ सुन कर बड़े आनन्दित होते हैं।

यह उत्पादक कल्पनाशक्ति मनुष्यमें ही होती है। किसी कार्य्यकी सिद्धिके लिये साध्य सोचना और कठिन दशामें सरल उपाय निकाल लेना, मनुष्यकी कल्पनाशक्तिका कार्य्य है। यदि एक दरवाजेकी कुंडी ऊँची हो और एक बालक उसे खोलना चाहता हो किन्तु वहाँ तक उसका हाथ न पहुँचता हो तो वह बालक झट स्टूल या कोई अन्य वस्तु लेकर नीचे रख लेगा; परन्तु एक कुत्ता या बिल्ली ऐसा नहीं कर सकती। उसको यही ज्ञान नहीं कि दरवाजा क्यों नहीं खुलता। वह केवल यह जानती है कि दरवाजा बन्द है और खुलता नहीं। क्यों नहीं खुलता, यह ज्ञान उसकी शक्तिके बाहर है। यदि एक कुत्ता वर्षा और ठंडी तेज वायुसे दुखित होकर किसी मकानमें चला आवे तो वह किसी कोनेकी खोज करेगा। वह

जानवर यह कल्पना नहीं कर सकता कि दरवाजा बन्द कर देनेसे वायु नहीं सतायगी और इस कारण वह बेचारा जाड़ेमें ठिठुरता रहेगा किन्तु दरवाजा बन्द नहीं करेगा। किन्तु मनुष्यका बालक ऐसी दशामें तत्काल दरवाजा बन्द कर लेगा, कुछ अन्य उपाय भी जाड़ेसे बचनेके विचार लेगा और ठंडसे अपनी रक्षा कर लेगा। एक व्यक्तिने जालके उस ओर एक गेंद फेंक दी, कुत्ता तत्काल जालमेंसे घुसकर उसे ले आया। उस व्यक्तिने फिर एक लकड़ी फेंक दी। कुत्ता गया और लकड़ीको बीचसे पकड़ कर लाने लगा, परन्तु वह लकड़ी बड़ी थी जालमेंसे नहीं निकली। कुत्तेने बहुत जोर लगाया परन्तु वह सफल नहीं हुआ। उसके मालिकने उस लकड़ीका सिरा पकड़कर कुत्तेके मुखमें दे दिया और तब वह जानवर लकड़ी लेकर निकल आया। उसने फिर लकड़ी फैंक दी और कुत्तेने फिर उसको बीचसे पकड़ा और फिर वही कठिनता आई। मनुष्यके बार बार लकड़ीका सिरा गहाने और कुत्तेके इस अवस्थामें लकड़ी लेकर चले आने पर भी कुत्तेको यह ज्ञान नहीं हुआ कि ऐसी कठिनतामेंसे वह क्यों कर निकले। कुत्ता वही गलती सर्वदा करता रहा और उसने कभी कोई साधन कल्पित नहीं किया और न बताये हुएका उसपर कुछ असर पड़ा। कारण स्पष्ट है कि जानवरोंमें यह कल्पनाशक्ति ही है नहीं। यह तो मनुष्यको ही शक्ति है जिससे वह असाध्यसे असाध्य दशाओंमें साधन निकाल लेता है और अपने सुख और रक्षाके उपाय ढूँढ़ लेता है।

बालकोंमें इस उत्पादक कल्पनाशक्तिका संवर्धन और विकाश करना परमावश्यक है। परन्तु ऐसा करनेके लिये उनको नितान्त स्वतन्त्र नहीं छोड़ना चाहिये। अत्यन्त कल्पना करनेसे मनुष्य निरा काल्पानिक हो जाता है, उसमें कार्य करनेकी शक्ति निर्बल पड़ जाती है और उसके आचार-संबन्धी विचार ढीले हो जाते हैं। १६–१७ वर्षकी आयुके समय शृंगार

और प्रेमकी उत्तेजना मनुष्य-मनमें उठनी प्रारम्भ होती है। जो माता, पिता या शिक्षक इस अवस्थामें संतानका ध्यान नहीं रखते वे स्वकर्तव्य-पालन नहीं करते। इस आयुमें लड़के गंदे और असम्भव उपन्यास नाटकादि पढ़ने लग जाते हैं। माता, पिता और शिक्षकोंका कर्तव्य है कि वे ऐसे गंदे और असम्भव साहित्यसे युवा स्त्री-पुरुषोंकी रक्षा करें और धार्मिक, सम्भव और अच्छी अच्छी बातोंकी तरफ उनका ध्यान आकर्षित करें। हम यह नहीं कहते कि कल्पना बढ़ानी नहीं चाहिये। यह शक्ति बढ़ानी चाहिये और अवश्य बढ़ानी चाहिये। यह बड़ी उपयोगी शक्ति है, परन्तु भावी संतानको हानिकर गलत पथसे बचाना हमारा सबका धर्म है और विशेष कर उनके संरक्षकोंका—माता पिता और गुरुओंका। इस लिये विद्यार्थियोंके सामने अच्छे अच्छे विचार और आदर्श रखने चाहिये। उनको अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़नेको देनी चाहिये जिससे वे सत्यपथ पर चल कर देश और जातिके भूषण बनें।

कल्पनाका तीसरा प्रकार विकारोंसे संबन्ध रखता है। इसको ललित कल्पना (Aesthetic imagination) कहते हैं। इसका कार्य आदर्श बनाना है, अतः हम इसको आदर्श कल्पना कहना चाहते हैं। यदि हम प्राँचीन ऐतिहासिक मंदिरों, मसजिदों और अन्य चित्रकारियोंको स्वाध्यायमें लावें तो विदित होगा कि अमुक जातिके ऐसे विचार और ऐसे आचार थे। उदाहरणके लिये भारतके कृष्णपूजकों और जैनियोंके मंदिर देखो। विष्णुके उपासकोंका आदर्श भोग और जैनियोंका आदर्श त्याग नजर आता है। इस आदर्शके अनुकूल गोकुलिये गुसाईं एक स्वछन्द भोगका जीवन व्यतीत करते हैं और जैनी फूँक फूँक कर पाँव रखते हैं और एक आत्मसंयमका जविन गुजारते है। यह नितान्त सत्य है कि जैसा जिस व्यक्ति या जातिका आदर्श होता

है वह व्यक्ति या जाति वैसी ही बन जाती है। मनुष्यके विचार सर्वदा कार्यमें परीणित होनेका प्रयत्न करते रहते हैं। विशेष प्रकारके लगातार विचार मनुष्यका स्वभाव बन जाते हैं। मनुष्यजीवन पर आदर्शका प्रभाव बहुत पड़ता है। इसी लिये विद्वान् जन कहा करते हैं कि मनुष्यको अपना आदर्श सर्वदा ऊँचा बनाना चाहिये। जिनका आदर्श ही नीचा है वे कभी ऊँचे नहीं चढ़ सकते। हिमालयके ऊँचे शिखर पर वही पहुँच सकता है जो वहाँ चढ़ना चाहता है। जिसने उस ऊँचे शिखर पर चढ़नेका कभी विचार ही नहीं किया वह बेचारा प्रकृतिकी शोभाका आनन्द कैसे ले सकता है। उन्नतिके लिये यह प्रथम आवश्यक है कि हमारे आदर्श उन्नत हों; फिर उन्नति हमारी और हम उन्नतिके।

जैसे विकारोंका प्रभाव कल्पना पर पड़ता है और अनुकूल आदर्श बनते हैं वैसे ही आदर्श कल्पनाका प्रभाव विकारोंपर पड़ता है और विकार उत्पन्न होते हैं। कवियोंके काव्य, चित्रकारोंके चित्र, गायकोंके गानें और संगतराशोंकी मूर्तियाँ एक आदर्श लेकर बनती हैं और इनका प्रभाव मन पर बहुत पड़ना है। हम जिस प्रकारके चित्र काव्यादि देखते और सुनते हैं हमारे मनमें उन्हींके अनुकूल भाव उठते हैं। हल्दीघाटकी लड़ाईका वर्णन सुनकर वीरताके और लैला मजनू पढ़नेसे शृंगारके भाव जाग उठते हैं। ऋषि, मुनि और महात्माओंके चित्रोंसे शान्त भाव और रंडी भडुवोंकी तसबीरोंसे गन्दे विकार उत्पन्न होते हैं। जिस जातिका साहित्य ऊँचा होता है वह जाति सर्वदा ऊँची रहती है। यदि किसी कारणवश अधोगतिको भी पहुँच जाय तो वह शीघ्र उन्नत हो सकती है। एक समय इंग्लैंडके एक विद्वानने कहा था कि यदि अँगरेजोंको इंग्लैंड और शेक्सपीयरके नाटकोंमेंसे एक वस्तु अवश्य खोनी ही पड़े तो इंग्लैंडका खो देना अच्छा है शेक्सपीयरका नहीं।

मनुष्योंमें सत्यता, भलाई और सौन्दर्य्यके जाननेकी शक्ति होती है। परन्तु वह सर्व मनुष्योंमें समान नहीं होती, किसीमें कम और किसीमें अधिक होती है। इन ही तीन पदार्थोंका आदर्श बनता है कि सत्य क्या है, भलाई क्या है और सौन्दर्य्य क्या है। जीवनादर्श बनानेमें विद्यार्थियोंकी सहायता करनी आवश्यक है।

यह खयाल नहीं करना चाहिये कि कल्पना नितान्त स्वच्छन्द है और किसी नियमके अधीन नहीं। कल्पना उन हीं इंद्रियजनित संवेदनोंके आधार पर होती है जिनका वर्णन हम कर आये हैं। स्वच्छन्दसे स्वच्छन्द कल्पना इंद्रियजनित संवेदनोंके ही आधारपर होती है और जिस प्रकारके प्रत्यक्षोंका प्रभाव हमारे मनपर अधिक होता है कल्पना उसी दिशामें उठती है। परन्तु बहुधा कल्पना असत्यकी ओर भी दौड़ जाती है। असत्य कल्पनाओंको दूर करनेका प्रबन्ध होना चाहिये और विद्यार्थियोंको विशेषकर ऐसे असत्य पथसे बचाना आवश्यक है। कल्पना एक बड़ी शक्ति है। इसका प्रयोग विना विचारे करना हानिप्रद है। इसके व्यवहारमें अत्यन्त सावधानीकी जरूरत है।

जहाँ कल्पनाका प्रभाव हमारे ज्ञान, विकार और प्रयत्न पर पड़ता है वहाँ शरीरपर भी बहुत पड़ता है। यह बहुत सामान्य बात है और इसको सर्वसाधारण जानते हैं कि स्वास्थ्यपर कल्पना कितना असर करती है। यदि एक स्वस्थ व्यक्तिसे यह कह दिया जाय कि तुम कुछ रोगी प्रतीत होते हो तो उसकी आरोग्यता गिर जायगी और यदि किसी रोगीसे यह कहा जाय कि तुम आरोग्य होते जाते हो तो वह स्वस्थ होता जायगा। बहुत बीमार झाड़े फूँके और गंडे डोरियोंसे अच्छे हो जाते है। कारण स्पष्ट है कि रोगीको यह विश्वास हो जाता है कि वह अब अच्छा हो जायगा और वह वास्तवमें अच्छा हो जाता है।

हमारे शरीरमें एक सहज शक्ति होती है जो शरीरको स्वस्थ रखने और हानिप्रद कारणोंका निवारण करनेका निरन्तर प्रयत्न करती रहती है। जब किसी कारणसे यह स्वाभाविक शक्ति निर्बल पड़ जाती है तो शरीरमें रोग अपना घर बना लेता है। परन्तु जब कल्पनाका प्रभाव इस शक्ति पर पड़ता है तो यह बलवती हो जाती है और रोगको दूर करनेमें समर्थ बन जाती है। यन्त्र-मंत्र गंडे-तावीजोंका यही सिद्धान्त है। सरल स्वभाव-वाले लोग अपने विश्वाससे स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं।

शरीरपर कल्पनाका कितना प्रभाव पड़ता है इस विषयमें प्रो० बुअल (Buell) फ्रांसकी एक घटनाका उल्लेख अपने 'मनोविज्ञानके तत्त्व' नामक ग्रन्थमें करते हैं। फ्रांसमें एक समय एक दोषीको प्राण दंड मिला। कारागारमें डाक्टरोंने उसे उसकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर एक तख्तेपर लिटा दिया और कह दिया कि तुमको फसद खोलकर मारा जायगा। उसकी दोनों बाजुओंपर सुईयाँ चुभो दी गई जिससे कि वह यह समझे कि मेरी नस काट दी गई है, और बाजुओंपर गरम पानी इस प्रकारसे डाला जाता रहा कि वह समझे मेरी नसोंमेंसे रक्त निकल रहा है। फिर झूठ ही यह कहना आरम्भ कर दिया गया कि रक्त बहुत निकल गया—अब इतना निकल गया और अब इतना निकल गया। सत्य तो यह था कि न कोई नस काटी गई थी और न कोई रक्त निकला था। परन्तु इन सारी बातोंका परिणाम यह हुआ कि वह मनुष्य वास्तवमें मर गया! क्यों कि वह कल्पना कर रहा था कि मैं मर रहा हूँ—मेरा रक्त निकल रहा है और आखिर वह मर गया।

कल्पनाशक्तिका संवर्धन ठीक पथमें करना आवश्यक है। कल्पना-शक्तिको बढ़ानेके लिये प्रत्यक्षोंकी जरूरत पड़ती है। कोई वस्तु भी विना सामानके नहीं बन सकती। ऐसे ही कल्पना भी विना सामानके नहीं बन सकती। जो मनुष्य आपको संसारसे अलग गिरि-कंदराओंमें बन्द रखते हैं और संसारसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते उनकी कल्पनाशक्ति ठीक नहीं

रह सकती। तुलसीदास, सूरदास और हरिश्चन्द्रने बड़े सुंदर सुंदर ग्रंथ रचे हैं। यदि ये महाकवि संसारको भले प्रकार प्रत्यक्ष नहीं करते तो ऐसे महान् ग्रंथ किस प्रकार रच सकते?

कल्पनाशक्तिको पुष्ट करना केवल लेखकोंके वास्ते ही आवश्यक नहीं है। इस शक्तिका संवर्धन करना प्रत्येक मनुष्यके लिये जरूरी है। संसारमें सामानकी कमी नहीं, सामान बहुत है। केवल त्रुटि इस बातकी है कि अधिकांश मनुष्य आँखें होते हुए भी आँखोंसे कार्य नहीं लेते, कर्ण होते हुए भी कर्णोंसे कार्य नहीं लेते। यदि वे संसारकी वस्तुओं पर स्वयं ध्यान दें और देखें कि क्या हो रहा है, संसारमें क्या क्या विद्यमान है, मनुष्यका स्वभाव कैसा है, तो उनके पास प्रत्यक्षोंका एक बड़ा कोष जमा हो जाय और उनकी कल्पनाशक्ति पुष्ट होकर बहुत लाभकारी सिद्ध हो। जितना अधिक सामान होता है वस्तुयें भी उतनी ही अधिक बनाई जा सकती हैं। संसारमें सामान बहुत है और सबका प्रयोग हो सकता है, यदि हम प्रयोग कर लेनेकी ओर ध्यान दें।

दूसरे, मनमें प्रतिमा स्पष्ट उत्पन्न करनेसे कल्पनाशक्ति पुष्ट होती है। जो बात देखी या सुनी जाय उसके लिखने या वर्णन करनेसे उसकी प्रतिमा मनपर स्पष्ट हो जाती है और स्पष्ट प्रतिमा कल्पनाकी बहुत बड़ी सहायिका है। तीसरे, जो बात हो उसका विच्छेद करना आवश्यक है। वस्तुको उसके भागोंमें अलग अलग करना चाहिये और फिर प्रत्येक भागका स्वाध्याय करना चाहिये। जब प्रत्येक भागकी प्रतिमा स्पष्ट हो जाय तो भिन्न भिन्न प्रतिमाओंको मिलाकर एक नवीन वस्तु बनाना चाहिये। असली बातोंको उनके भागोंमें अलग अलग करना और फिर भिन्न भिन्न बातोंको लेकर नवीन बात तैयार करना कल्पनाशक्तिको बड़ी सहायता देता है। अभ्याससे प्रत्येक शक्ति पुष्ट होती है। ये विच्छेद और मिलापके

नियम प्रतिमाको स्पष्ट करने और नवीन कल्पना गढ़नेके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं।

कल्पनाशक्ति पुस्तकोंके पाठसे भी बढ़ जाती है, परन्तु सर्वदा दूसरोंपर निर्भर रहना अच्छा नहीं। इस शक्तिको पुष्ट करनेके लिये स्वयं परिश्रम करना बहुत लाभदायक है। जो व्यक्ति स्वयं कुछ नहीं करता और सर्वदा दूसरोंपर निर्भर रहता है वह आवश्यकता पड़नेपर हानि उठाया करता है। बड़े बड़े कवियों, लेखकों और वक्ताओंकी कल्पनाशैलीका पाठ करो और उनकी कल्पनापद्धतिके अनुसार स्वयं कल्पना करनेका अभ्यास करो। यह बहुत सुरक्षित मार्ग है।

कतिपय सज्जन कल्पनाशक्ति बढ़ानेके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि कल्पनाको पुष्ट करनेसे मनुष्य केवल काल्पनिक हो जाता है। उसकी कार्य्य करनेकी शक्ति जाती रहती है। परन्तु यह उनकी भूल है। यह कोई नहीं कहता कि केवल कल्पनाको ही पुष्ट करो और अन्य किसी शक्तिको संवर्धित मत करो। सभी मानसिक शक्तियाँ पुष्ट करनी आवश्यक हैं और अन्य मानसिक शक्तियोंके संग कल्पनाको पुष्ट करनेमें कोई भय नहीं। दूसरे किसी शक्तिका वैज्ञानिक शैलीके अनुसार पुष्ट करना लाभके सिवा हानि नहीं पहुँचा सकता। वैसे तो मनमें स्मृति, कल्पना, विचार आदि सहज ही उठते रहते हैं, किन्तु किसी शक्तिपर अभ्यास द्वारा अधिकार प्राप्त कर लेना अत्यन्त लाभदायक है। ऐसा करनेसे वह शक्ति अपने अधिकारमें हो जाती है और उससे इच्छानुकूल कार्य्य लिया जा सकता है।

अन्तमें यही वक्तव्य है कि जीवनमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आदर्श बनाना परमावश्यक है। महापुरुषोंके चरित्र पढ़ो, इतिहासका अनुशीलन करो और निश्चय करो कि तुम क्या बनना चाहते हो। जब एक बार आदर्शका निश्चय हो गया तो तमाम शक्ति उस आदर्शतक पहुँचनेमें लगा दो।

जो अपनी शक्तिको एक केंद्र पर नहीं ला सकते वे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं कर सकते। अँगरेजीमें एक कहावत है कि जो सेवक दो स्वामियोंको खुश करना चाहता है वह किसीको भी खुश नहीं कर सकता।

रोचक प्रश्नावली।

(१) क्या तुम किसी ऐसी वस्तुका स्मरण या कल्पना कर सकते हो जिसको तुमने कभी प्रत्यक्ष नहीं किया?

(२) किसान, लुहार, चमार, खाती और दरजी पुष्ट कल्पनाका क्या प्रयोग कर सकते हैं?

(३) हरिश्चन्द्र, बंकिम या टैगोरके किसी एक नाटक, उपन्यास या कहानीको आधी पढ़ो और उसकी शेष कथाको स्वकल्पना द्वारा पूर्ण करो। लेखकसे तुम्हारी कथामें कहाँ भेद पड़ता है?

(४) हिंदू, जैनी, मुसल्मान और ईसाई, इनके स्वर्गोंका वर्णन पढ़कर यह बताओ, कि इनके आदर्श क्या हैं?

(५) तुम्हारे स्वर्गमें क्या क्या होना चाहिये?

(६) एक नवीन कहानी बनाओ।

(७) तम्बाकू पीनेकी खराबियों पर एक नाटक लिखो।

(८) एक आदर्श नगरकी कल्पना करो।

(९) 'आदर्शकी आवश्यकता' इस विषय पर एक निबन्ध लिखो।

ग्यारहवाँ अध्याय।

विचार।

पुनर्प्रत्यक्षका तीसरा सोपान विचार (Thought) है। प्रत्यक्ष, स्मृति और कल्पना तीनोंका संबन्ध वास्तविक पदार्थोंसे है। जब हम प्रत्यक्ष करते हैं तो किसी न किसी वास्तविक वस्तु—कलम, दवात, घोड़ा, हाथी, लकड़ी, पत्थर—का करते हैं और वह वस्तु-विशेष होती है। यथा—यह कलम या वह कलम। स्मृति और कल्पना हमारे सामने प्रतिमा उत्पन्न करती हैं; परन्तु इन मानसिक प्रतिमाओंका न्यूनाधिक संबंध शारीरिक पदार्थोंसे अवश्य होता है। परन्तु विचारमें वास्तविक शारीरिक पदार्थोंका होना आवश्यक नहीं। विचार केवल मानसिक पदार्थों, संवितों (Ideas) और वस्तुसम्बन्धसे सम्बन्ध रखता है। हम एक हरे आम नीबू या अनारका प्रत्यक्ष कर सकते हैं। हम हरे आम, नीबू, या अनारकी स्मृति कर सकते हैं और हरे आम, नीबू या अनारकी कल्पना कर सकते हैं; परन्तु हरे आम, नीबू या अनारसे पृथक् केवल हरियालीका हम प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। न उसकी स्मृति हो सकती और न कल्पना। यह शक्ति विचारकी है कि वस्तुओंके समान उनके गुणोंपर भी वह अलग विचार कर सकती है। किसीने तलवारसे अंगुली कटा ली। स्मृतिने इस घटनाका चित्र खींच दिया, और कल्पनाने कुछ कल्पना कर ली; परन्तु काटनेवालीसे काटनेको अलग करना विचारका कार्य्य है। ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि विषय विचारशक्तिके हैं। न इनका प्रत्यक्ष हो सकता है, न स्मृति और न कल्पना।

कई विद्वानोंका यह मत है कि बाल्यावस्थामें विचारशक्ति नहीं होती। बालक विचार नहीं कर सकते। बालककी आयु जब १० वर्षसे १४ वर्षतक होती है तब विचारशक्ति प्रारम्भ होने लगती है। युवा अवस्थामें कल्पनाका आधिपत्य रहता है और वृद्धावस्थामें विचारशक्ति

पुष्ट हो जाती है। परन्तु अति वृद्धि होनेपर जहाँ शारीरिक अवयव निर्बल हो जाते हैं वहाँ सब मानसिक शक्तियाँ भी बलहीन हो जाती हैं। वास्तवमें हम शिशु अवस्थासे ही विचारशक्तिसे कार्य्य लेने लग जाते हैं; परन्तु यह शक्ति अन्य सब मानसिक शक्तियोंके पश्चात् पुष्ट होती है। बालक किसी व्यक्तिके आनेकी आहट सुनकर कह देता है कि पिता आगये। आहट सुनकर पिताके आनेका अनुमान बिना विचारके कैसे हो सकता है? आहट-को सुनकर बालकके मनमें लगभग इस प्रकारके विचार उठा करते हैं— जब कभी कोई आता है आहट होती है। जब कभी पिता आते हैं आहट होती है। पिताके आनेकी ऐसी आहट होती है। यह आहट पिताके आने जैसी है, अतः पिता आते हैं। यह विचारप्रक्रिया बहुत जटिल है, परन्तु जब बालक आहटको सुन कर पिताके आनेका अनुमान लगाता है तो ऐसे ही विचार उसके मनमें उठते हैं। इस प्रकारके विचा-रोंके बिना पिताके आनेका परिणाम निकालना असम्भव है। बालकोंके सम्मुख जब कोई नवीन वस्तु आती है तो वह सर्वदा प्रश्न किया करते हैं—यह क्या है? यह ऐसी क्यों है? यह कैसे हो गया?—ये क्या, क्यों और कैसेके प्रश्न बिना विचारोंके नहीं उठ सकते।

यहाँ पर यह फिर लिखना पड़ता है कि मानसिक शक्तियाँ अलग अलग नहीं हैं। ये सब मिली हुई हैं। हम केवल वैज्ञानिक प्रयोजनके लिये इनका वर्णन अलग अलग कर रहे हैं। जब हम किसी वस्तुका प्रत्यक्ष, स्मरण या कल्पना करते हैं तो उसमें विचार भी सम्मिलित रहता है। मैं अपनी मेजपर रक्खी हुई पुस्तक पर विचार कर रहा हूँ किन्तु पुस्तकका प्रत्यक्ष मेजके संग हो रहा है। यह शक्ति विचारकी है कि मेजसे पृथक् पुस्तकका विचार होता है कि मेज और पुस्तकका क्या संबन्ध है। इसी प्रकार स्मृति-पर भी विचारका प्रभाव पड़ता है। जिस समय कालिज या स्कूलकी प्रतिमा मनमें स्मरण होती है उस समय यह विचार भी आता है कि हमारा

स्कूल या कालिज ऐसा है, अन्य स्कूल या कालिज ऐसे नहीं हैं। ये साधारण विचार हैं जो शिशु अवस्था तकमें पाये जाते हैं। विचार कल्पनामें भी विद्यमान रहते हैं । यदि एक पुरुष एक प्रकारकी मशीनकी कल्पना कर रहा हो और इस बातकी आशा करता हो कि ऐसी मशीनसे संसारको लाभ होगा तो यह आवश्यक है कि वह व्यक्ति यह प्रथम विचार कर ले कि उस मशीनके भिन्न भिन्न भागोंका सम्पूर्ण यंत्रसे क्या संबन्ध होगा, उससे किस प्रकारसे कार्य्य होगा, उसमें क्या व्यय और क्या लाभ होगा।

विचारके तीन अंग हैं, अर्थात् विचार तीन प्रकारसे किया जाता है— संवित, निर्धारण और तर्कना ।

हम मनुष्य, घोड़ा, हस्ती, पुस्तक आदि अनेक शब्दप्रयोग करते हैं। इन शब्दोंके प्रयोगसे हमारे मनमें जो विचार उठते हैं उनको संवित (Concepts) कहते हैं। घोड़े शब्दसे चाहे किसी काले, पीले, ऊँचे या नीचे घोड़ेका विचार हो और चाहे किसी विशेष प्रकारके घोड़ेका विचार न हो; पर इस घोड़े शब्दसे एक ऐसी वस्तुका अर्थबोध होता है जिसमें कुछ ऐसे विशेष गुण पाये जाते हैं जिनके कारण वह वस्तु अन्य सब वस्तुजातियोंसे अलग हो जाती है । घोड़ेसे जानवरोंकी एक विशेष जातिका अर्थ लिया जाता है । इस जातिविशेषमें ऐसे कुछ गुण मिलते हैं जिससे यह अन्य गधों, हस्तियों, पुस्तकों आदि जातियोंसे अलग हो जाती है । इस प्रकारके सामान्य विचारोंको संवित कहते हैं।

संवित बनानेके पाँच साधन हैं । प्रथम साधन निरीक्षण (Observation) है । उदाहरणके वास्ते हम घोड़ेका संवित ले लेते हैं । हम भिन्न भिन्न प्रकारके घोड़ोंका निरीक्षण करते हैं और काले श्वेत, लाल पीले, ऊँचे नीचे, मोटे पतले इत्यादि घोड़ोंके अनेक प्रकार देखते हैं । परन्तु जितने प्रकारोंका अधिक निरीक्षण हो सके उतना ही अच्छा है और उससे संवित अधिक पूर्ण बनता है ।

दूसरे, इन भिन्न भिन्न प्रकारके घोड़ोंको लेकर इनकी परस्पर तुलना (Comparison) करते हैं कि इनमें कौन गुण समान हैं और कौन भिन्न। इन जानवरोंके आकार, रंग, रूप, रहन, सहन, स्वभाव आदिकी तुलना की जाती है।

तीसरे, समान गुणोंका प्रत्याहार (Abstraction) होता है। भिन्न भिन्न प्रकारके घोड़ोंमें जो गुण समान होते हैं उनको पृथक् कर लेते हैं।

चौथे, समान गुणोंका जाती-करण (Generalisation) करते हैं। जो गुण समान हैं और जिनको हमने विभिन्नताओंमेंसे पृथक् किया है उनको घोडोंकी सारी जाति पर लगाते हैं और उस जातिको जिसपर ये समान गुण लागू होते हैं अन्य जातियोंसे जिनपर ये समान गुण लागू नहीं होते अलग कर लेते हैं कि ये गुण इस जातिविशेषके प्रत्येक सदस्यपर लगते हैं, इनके सिवा अन्य किसी वस्तु पर नहीं लग सकते। अर्थात् कुछ विशेष गुण सब घोड़ों, मनुष्यों या पुस्तकोंमें समान पाये जाते हैं, अतः इन विशेष समान गुणवालोंकी एक विशेष जाति घोड़ा, मनुष्य या पुस्तक अलग बन जाती है।

पाँचवें, जब हम उपर्युक्त प्रक्रियासे किसी जातिको बना चुकते हैं तब हम उसको एक नाम देते हैं—अर्थात् यह कुत्ता जाति है, वह गधा जाति है, यह पक्षी जाति है, इत्यादि। किसी जातिको नाम देनेसे विचारोंमें बड़ी सरलता आ जाती है। यदि हम एक जातिका नाम न रक्खें तो उस जातिका विचार करते समय प्रत्येक बार उसके सारे समान गुणोंको ध्यानमें रखना पड़े। यह कठिनता नाम रखने पर जाती रहती है।

परन्तु जैसे जैसे हमारा अनुभव बढ़ता रहता है वैसे ही वैसे हमारा संवित परिवर्तित होता रहता है। हम भिन्न भिन्न बातोंको देख-सुनकर किसी एक बातके संवित तक पहुँचते हैं, किन्तु यह अत्यन्त कठिन है कि

एक व्यक्तिको एक प्रकारकी तमाम वस्तुओंका अनुभव हो जाय । इसी लिये संवित बहुधा पूर्ण नहीं होते । जब कभी किसी नवीन वस्तुका परिज्ञान होता है तो पूर्व संवितका परिवर्तन करना पड़ता है । भारतकी श्वेत बतक देखकर एक भारतवासी यह संवित बनाता है कि बतक (Swan) श्वेत होती है । परन्तु जब वह आस्ट्रेलियाकी काली बतक देख लेता है तो उसको अपना पूर्व विचार बदलना पड़ता है । बतकोंके संवितमें जो श्वेतताका गुण समान था उसे अब निकालना पड़ता है और प्रत्येक परिवर्तनसे संवित सत्यताके निकट पहुँचता जाता है ।

अँगरेजी भाषामें एक छोटीसी कविता है जिसका सारांश यह है कि अंडेमें रहनेवाला जीव यह समझता है कि यह संसार इसी श्वेत गोलाकार वस्तुका बना हुआ है । किन्तु जब वह उस अंडेको छेद कर बाहर घोंसलेमें आ-जाता है तो यह खयाल करता है कि यह संसार छोटे छोटे तन्तुओंका बना हुआ और मेरे माता-पितासे ढका हुआ है । जब वह फुदक कर बाहर वृक्षपर आ बैठता है तब सोचता है कि संसार तो हरे हरे पत्तोंका बना है । परन्तु पंख जमने पर जब वह नीले अनन्त आका-शमें उड़ता है तो उसकी समझमें नहीं आता कि संसार किस वस्तुका बना हुआ है । संवितोंका परिवर्तन अनुभवके संग संग होता रहता है । अतः पूर्ण और सत्य विचारके अभिलाषियोंको आवश्यक है कि वे घरहीमें कूपमंडूक न बने रहें, संसारमें पर्यटन करके देखें कि सत्यता क्या है ।

संवितोंका ठीक होना अत्यन्त आवश्यक है । संवित जितने पूर्ण और सत्य होंगे विचार भी उतने ही पूर्ण और सत्य होंगे । पूर्ण और सत्य संवितों पर ही ऊँचे विचार निर्भर हैं । जहाँ सामान ही ठीक नहीं वहाँ पदार्थ ठीक कैसे बनाये जा सकते हैं । संवित ऊँचे विचारोंके लिये सामान सदृश हैं । जहाँ संवित ही भ्रमपूर्ण और अधूरे हों वहाँ विचार भ्रमरहित और पूर्ण कैसे हो सकते हैं ? ठीक ठीक विचार करनेके वास्ते संवित भी ठीक बनाने आवश्यक हैं ।

कुछ विद्वानोंका मत है कि कल्पना और संवितमें कुछ भेद नहीं, ये दोनों समान हैं। यदि कुछ होगा भी तो अत्यन्त कम और यदि कल्पना ठीक करनेका ध्यान रक्खा जाय तो संवित स्वयं ठीक हो जायँगे। परन्तु यह मत सत्य नहीं है। कल्पना और संवितमें बड़ा भेद है। कल्पनाका संबंध वास्तविक पदार्थसे होता है, कहीं अधिक और कहीं कम। कल्पनामें वास्तविक पदार्थकी समानता अवश्य होती है, अर्थात् कल्पना वास्तविक वस्तुकी न्यूनाधिक प्रतिमूर्ति होती है; परन्तु संवित किसी वस्तुकी प्रतिमा नहीं। हम हरे आमकी कल्पना कर सकते हैं; किन्तु हरियालीकी कल्पना नहीं कर सकते। हरियालीका संवित ही हो सकता है। वास्तवमें गुणी और गुण संग संग रहते हैं और गुणीके विना गुणकी स्थिति नहीं। स्मृति और कल्पना वास्तविक वस्तुओंकी प्रतिमूर्ति होती हैं, कोई न्यून कोई अधिक। यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिमा सर्वांग समान हो। अतः स्मृति और कल्पना गुणीसे पृथक् किसी गुणका स्मरण और कल्पना नहीं कर सकती। यह कार्य्य विचारशक्तिका है, जो लाल पत्थरसे अलग लालीका, भारी पुस्तकसे अलग भारीपनका और भले पुरुषसे अलग भलाईका विचार कर सकती है। यह विचारशक्ति प्रथम एक विशेष वस्तुमेंसे गुण पृथक् कर लेती है और फिर वस्तुओंकी एक जातिमेंसे और फिर जातियोंके एक समूहमेंसे समान गुण अलग कर लेती है और ऐसा करनेसे संवित बन जाते हैं। इन ही प्रत्याहारोंको संवित कहते हैं। संवित यद्यपि इंद्रियोंद्वारा ही आता है परन्तु सीधे रूपमें इसका प्रत्यक्ष नहीं होता। कोई व्यक्ति दृष्टि द्वारा हरियालीका प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, दृष्टिसे केवल हरी वस्तुओंका ही प्रत्यक्ष होता है। बहुतसे हरे पदार्थोंको देखकर उनमेंसे हरियाली पृथक् निकाल कर एक गुण बना दिया जाता है।

यहाँ यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि साधारणतया शब्द दो अभिप्रायोंमें प्रयुक्त होते हैं। एक अभिप्राय गुणसंबन्धी होता है। मनुष्य

शब्दसे हम मनुष्योंके गुणोंका विचार करते हैं—मनुष्यकी बुद्धि, विचार-शक्ति आदिपर हमारी दृष्टि जाती है और मनुष्य शब्दसे एक ऐसी वस्तुका बोध होता है जो खनिज और वृक्ष जातियोंसे अलग होती है। दूसरा अभिप्राय शब्दके विस्तारसे संबन्ध रखता है। मनुष्य शब्द कहनेसे सारे मनुष्योंका ग्रहण होता है–हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, ईसाई, हब्शी, आर्यन, मंगोलियन। मनुष्य शब्दमें सब मनुष्य सम्मिलित हैं। संवित बनानेमें इन दोनों अभिप्रायोंसे बड़ी सहायता मिलती है। जिस शब्दका विस्तार जितना अधिक होता है उसका गुणात्मक अभिप्राय उतना ही कम और जिस शब्दका गुणात्मक अभिप्राय जितना अधिक होता है उसका विस्तारात्मक अभिप्राय उतना ही कम होता है। ये दोनों अभिप्राय परस्परविरुद्ध दिशामें चलते हैं। उदाहरणके लिये मनुष्य शब्द लो। जब मनुष्यको इसकी उपजातियोंमें विभाजित करते हैं तब विस्तार घट जाता है और गुण बढ़ जाते हैं। मनुष्य शब्दमें अँगरेज हिन्दुस्तानी आदि सारी मनुष्य जातियाँ और उनके गुण बुद्धि विचार आदि सम्मिलित हैं। परन्तु अँगरेज या हिन्दुस्तानी शब्द सारे मनुष्योंपर नहीं घट सकता, वह केवल इँग्लैंड या भारतके रहनेवालोंपर ही लागू होता है। परन्तु तब गुण बढ़ जाते हैं। यथा–अँगरेजोंमें श्वेतता और इँग्लैंडकी निवासिता आदि गुण अधिक हो जाते हैं। किन्तु यदि मनुष्यको जानवरोंके संबन्धमें विचारें तो जानवर शब्दका विस्तार सारे हाथी, घोड़े, शेर, बकरा और मनुष्य आदि पर फैल जाता है, गुणोंमें न्यूनता आजाती है और बुद्धि विचार घट जाते हैं।

विचारके प्रथम अंग संवित बनानेका उल्लेख हो चुका। अब विचारके दूसरे अंग निर्धारण (Judgement) बनानेका विचार किया जाता है। निर्धारण संवितोंसे बनता है और इसमें तीन पद उद्देश्य (Subject), विधेय (Predicate) और योजक (Copula) होते हैं। निर्धारणमें दो वस्तुओंकी तुलना की जाती है, यथा–घोड़ा काला है। इसमें

'घोड़ा' उद्देश्य, 'काला' विधेय और 'है' योजक है। और घोड़े और कालसकी तुलना की गई है कि घोड़े और कालसमें संबन्ध है। जहाँ निर्धारण यह बताता है कि दो पदोंमें संबन्ध है वहाँ यह भी जाहिर करता है कि अमुक दो पदोंमें संबन्ध नहीं है। यथा—घोड़ा काला नहीं है, अर्थात् घोड़े और कालसमें कोई संबन्ध नहीं है। इस विषयमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि निर्धारित करनेमें अनुभव और स्मृतिकी जरूरत होती है। एक व्यक्ति निर्धारित करता है कि मनुष्य हस्ती नहीं है। इस निर्धारणसे पूर्व यह आवश्यक है कि निर्धारित करनेवालेको मनुष्य और हस्ती दोनोंका अनुभव हो और निर्धारण करते समय इन पूर्व अनुभवोंकी स्मृति हो, अन्यथा कोई निर्धारण नहीं बन सकता। बिना पूर्वानुभव और उसकी स्मृतिके यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक वस्तु ऐसी है या ऐसी नहीं है।

मनोविज्ञानका व्यापार किसी निर्धारणकी सत्यता या असत्यताका विचार करना नहीं है। इस विज्ञानकी दृष्टिमें सत्य और असत्य दोनों प्रकारके निर्धारण समान हैं। किसी निर्धारणकी सत्यता या असत्यता पर विचार करना तर्क (Logic) या दर्शन (Philosophy) का कार्य्य है। मनोविज्ञानका कार्य्य केवल इतना है कि निर्धारण किस प्रकार सत्य या असत्य समझे जाते हैं—किसी निर्धारणको सत्य या असत्य समझनेमें मानसिक दशा क्या होती है। यद्यपि हमने प्रत्यक्ष ठीक किये हैं और स्मृति द्वारा प्रत्यक्षोंकी प्रतिमायें हैं भी ठीक बनी हैं, तथापि जब दो वस्तुओंकी तुलना की जाती है—उनको उद्देश्य और विधेयके रूपमें रक्खा जाता है—और उनके सम्बन्धमें निर्धारण बनाया जाता है तब यदि हमारे उन विचारोंसे जिनको हमने सत्य समझ रक्खा है हमारा नवीन निर्धारण अनुकूल न हो तो निर्धारण असत्य समझा जाता है और यदि अनुकूल हो तो सत्य समझा जाता है।

यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सत्य प्रत्यक्षों और सत्य प्रतिमाओंसे निर्धारण सत्य ही होता है । ऐसा बहुधा देखा जाता है कि प्रत्यक्ष और प्रतिमा दोनों सत्य परन्तु निर्धारण बिल्कुल असत्य । उदाहरणके लिये मनुष्य और हस्तीके प्रत्यक्ष और प्रतिमायें सत्य हैं परन्तु यह निर्धारण कि मनुष्य हस्ती है--असत्य है । निर्धारणकी सत्यता या असत्यता दो पदोंके सम्बन्ध पर निर्भर है, किसी वस्तुके सत्य प्रत्यक्ष या सत्य प्रतिमा पर नहीं ।

मन उसी प्रकार कार्य्य करना चाहा करता है जिस प्रकार वह करता आया है । यदि हमारे नवीन निर्धारण हमारे प्राचीन निर्धारणोंके अनुकूल न हों तो हमको एक निर्धारण बदलना पड़ता है । दो विरुद्ध निर्धारण स्थित नहीं रह सकते । मनको एक ही दिशामें कार्य्य करनेका इतना अभ्यास हो जाता है कि नवीन दिशा ग्रहण करना और प्राचीन छोड़ना उसके वास्ते अत्यन्त कठिन पड़ जाता है । और जो विचार हमारे पूर्वनिश्चित विचारोंसे मेल नहीं खाते वे असत्य कहे जाते हैं । यही कारण है कि वृद्ध पुरुष नवीन विचारोंको असत्य समझते हैं और उन्हें कभी ग्रहण नहीं करते । यही कारण है कि वृद्ध हिन्दू जाति नवीन उदार विचारोंको स्वीकार नहीं करती, और हानि पर हानि उठाने पर भी पुरानी लकीरकी फकीर बनी हुई है ।

मनकी यह प्रवृत्ति कि नवीन निर्धारण पूर्व निश्चित निर्धारणोंके अनुकूल हों सत्य निर्धारण बनानेमें बड़ी बाधक होती है । सत्य बात भी, यदि हमारे निश्चित विचारोंसे मेल नहीं खाती तो असत्य ठहर जाती है, और असत्य सत्यके आसन पर चढ़ बैठती है ।

विचार स्थिर होनेसे उन्नति रुक जाती है । संवितोंकी तुलना निरन्तर होनी आवश्यक है । इनके परस्पर संबन्धोंका निश्चय भी लगातार होता रहना चाहिये । जो संबन्ध असत्य सिद्ध हों उनको बदल देना और सत्य संबन्ध स्थिर करना चाहिये । यही उन्नति है ।

निर्धारणके विषयमें मनकी तीन वृत्तियाँ होती हैं—विश्वास, संदेह और अविश्वास । मन पहले निर्धारित करने लगता है और जब वह निर्धारण बन जाता है तो मन उसको सत्य समझता है । मनकी इस वृत्तिको विश्वास कहते हैं । जैसे पृथ्वी सूरजके चारों तरफ घूमती है, और सूरजके प्रकाशमें सात रंग होते हैं । बहुधा ऐसा होता है कि जो निर्धारण हम बनाते हैं वह हमारे पूर्व निश्चित विचारोंसे मेल नहीं खाता । यदि हम अपने प्राचीन विचारोंको सत्य मानते हैं तो नवीन निर्धारणकी पुनः जाँच प्रारम्भ होती है कि नवीन निर्धारण सत्य है या प्राचीन इस वृत्तिको संदेह कहते हैं । यदि नवीन कथन दुबारा जॉच करने पर भी युक्तियुक्त प्रतीत होता हो परन्तु हम नवीनको प्राचीनसे मिला न सकते हों और अपने प्राचीन विचारको ही सत्य मानते रहें—नवीन विचारपर कुछ ध्यान न दें तो ऐसी वृत्तिको अविश्वास (Unbelief) कहते हैं । पूर्व निर्धारण यह है कि सूरज पृथ्वीके चारों तरफ घूमता है और नवीन निर्धारण यह है कि पृथ्वी सूरजके इर्द गिर्द घूमती है । य दोनों निर्धारण मेल नहीं खाते । अतः नवीन विचारकी सत्यतामें संदेह उत्पन्न हो जाता है और जाँच फिर आरम्भ हो जाती है कि प्राचीन सत्य है या नवीन ? सूरज घूमता है या पृथ्वी ? परन्तु परीक्षा करनेपर जब हम युक्तियोंको नवीनके अनुकूल पाते हैं और प्राचीन पर इतना विश्वास हो गया है कि उसको छोड़ नहीं सकते तो नवीनके प्रति हमें अविश्वास हो जाता है ।

बाल्यावस्थामें अधिकांश निर्धारण स्वाभाविक होते हैं । इस अवस्थामें पूर्वसंचित निर्धारण इतने नहीं होते कि किसी नवीन निर्धारण पर प्रभाव डालें । यही कारण है कि बालक प्रश्नोंके उत्तर बड़े बड़े विचित्र और अद्भुत दिया करते हैं । जब निर्धारण पर्याप्त संख्यामें बन चुकते हैं तब नवीन निर्धारण पर प्रभाव पड़ना आरम्भ होता है ।

विचारका तीसरा अंग तर्कना (Reasoning) है। अधिकांश निर्धारण अनुमानसे बनाये जाते हैं। अनुमान द्वारा निर्धारण बनानेको तर्कना कहते हैं। हम तर्क सर्वदा करते रहते हैं—कभी एक प्रकारसे और कभी दूसरे प्रकारसे। मैं खिड़कीमेंसे देखता हूँ कि वृक्षके पत्तोंपर प्रकाश पड़ा है और कह देता हूँ कि सूरज चमक रहा है। इस अनुमानको यदि पूर्ण रूप दिया जाय तो तर्कना इस प्रकार होगी—

जब कभी मैं पत्रोंपर ऐसा प्रकाश देखता हूँ तो सूरज चमक रहा होता है।

मैं पत्रोंपर ऐसा ही प्रकाश देखता हूँ, अतः सूरज चमक रहा है।

साधारण वार्त्तालाप और विचारमें उन प्रतिज्ञाओं (Promises) का वर्णन नहीं किया जाता जिनके आधार पर अनुमान लगाया जाता है। साधारण प्रयोजनोंके लिये सर्वसाधारण केवल अनुमानका ही उल्लेख कर देते हैं। प्रत्येक बार प्रतिज्ञाओंका उल्लेख व्यर्थ और थकानेवाला बन जाता है। परन्तु यदि हम प्रतिज्ञाओंका प्रकाशन करना चाहें तो कर सकते हैं। यह सर्वदा ध्यानमें रखना चाहिये कि ऐसे तर्कोंमें सामान्य विचार निरन्तर विद्यमान रहता है जैसा उपर्युक्त उदाहरणके शब्द 'जब कभी' से जाहिर होता है।

सारा आनुमानिक तर्क सामान्यानुमान (Inductive Logic) और विशेषानुमान (Deductive Logic) दो भागोंमें विभक्त होता है। सामान्यानुमान विशेषसे सामान्य पर पहुँचनेको कहते हैं, अर्थात् विशेष घटनाओंसे एक सामान्य नियम बनाना कि इन घटनाओंमें एक नियम कार्य्य करता है। विशेषानुमान सामान्यसे विशेष पर पहुँचनेको कहते हैं, अर्थात् एक सामान्य नियमको एक विशेष घटना पर घटाना कि यह नियम इस घटना पर कहाँ तक घटता है। जहाँ सामान्य अनुमानका अन्त होता है वहाँ विशेष अनुमान आरम्भ होता है।

सामान्यानुमानमें विशेष वस्तुओंकी परीक्षा करके उनसे एक सामान्य नियमका अनुमान लगाया जाता है । यथा यह अँगरेज गोरा है। वह अँगरेज गोरा है और जितने अँगरेज देखनेमें आये सब गोरे हैं, अतः अनुमान होता है कि अँगरेज गोरे होते हैं । जितने मनुष्य पहिले उत्पन्न हुए थे सब मर गये । रामलाल मनुष्य था मर गया, श्यामलाल मनुष्य था मर गया, कर्मचन्द मनुष्य था मर गया, इत्यादि । जो मनुष्य था वह मर गया, अतः मनुष्य मरणधर्मा है । विशेष बातोंकी परीक्षा करके सामान्य नियम इस प्रकार बनाया जाता है, परन्तु इस अनुमानका आधार यह है कि प्राकृतिक नियम सर्वदा समान रहते हैं और बदलते नहीं । यदि भूत कालमें यह नियम था तो भविष्यमें भी यही नियम होगा ।

हमारे सामान्य अनुमान बहुधा गलत हो जाते हैं । एक पूर्ण अनुमान करनेके लिये यह आवश्यक है कि उसके संबन्धकी प्रत्येक बातका अनुभव हो । परीक्षा जितनी अधिक बातोंकी होगी अनुमान उतना ही पूर्ण होगा । यह नितान्त असम्भव है कि हम संसारकी भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सब बातोंकी परीक्षा कर सकें । यदि हम ऐसा नहीं कर सकते तो हमारा सामान्यानुमान पूर्ण नहीं हो सकता । उदाहरणार्थ सूरजको लो । भूत कालमें सूरज यद्यपि पूर्व दिशासे उदय होता रहा तथापि यह कोई नहीं कह सकता कि सूरज अवश्य कल पूर्व दिशासे ही निकलेगा और पश्चिमसे नहीं । भूत कालमें मनुष्य यद्यपि मरते रहे तथापि यह कोई दावा नहीं कर सकता कि भविष्यमें भी मनुष्य अवश्य मरेंगे । यह कौन जानता है कि प्रकृतिका जो नियम कल था वह कल भी होगा । सम्भव है कि प्रकृतिके नियम आज तक कुछ और हों और कलसे कुछ और हो जायँ । साधारण बातोंमें भी सामान्यानुमानकी अपूर्णता ही सिद्ध होती है । यथा मैंने एक थैलीमें ४० वार हाथ डाला और प्रत्येक वार रुपया हाथ आया । क्या कोई निश्चयपूर्वक कह सकता है कि ४१ वीं वारमें भी रुपया ही

हाथ आयगा ? क्या यह संभव नहीं कि थैलीमें केवल ४० ही रुपये हों और बाकी पैसे ?

हाँ, यदि हम तमाम चीजोंकी जाँच कर सकें तो निश्चयपूर्वक अनुमान लगा सकते हैं कि अमुक बात ऐसे ही है । यथा—मैंने अपने कमरेकी तमाम पुस्तकोंकी परीक्षा की और देखा कि यह मनोविज्ञान लाभदायक है, यह आचारविज्ञान लाभदायक है, इत्यादि । अतः मेरे कमरेकी तमाम किताबें लाभदायक हैं । यहाँ गलतीकी कोई संभावना नहीं और इसी लिये यह अनुमान पूर्ण है । परन्तु ऐसा पूर्ण अनुमान ऐसी ही दशामें हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अनुमान लगाता रहता है किन्तु जैसा कि हम पूर्वमें लिख आये हैं पूर्ण अनुमान बहुत कम होते हैं । इस प्रकारके सामान्यानुमानोंका आधार प्राकृतिक नियमोंकी समानता है कि एक वस्तुके संबन्धमें प्रकृतिका जो नियम आज है उस वस्तु या उसके समान वस्तुके संबन्धमें यदि दशा परिवर्तित नहीं हुई तो वह नियम कल भी समान रहेगा, परिवर्तित नहीं होगा । परन्तु यदि दशामें परिवर्तन हो गया तो नियममें भी परिवर्तन हो जायगा । उदाहरणके लिये किसी वस्तुको लेकर ऊपर आकाशमें फैंको । जो वस्तु ऊपर फैंकी जाती है वह पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिसे खिंचकर वापिस पृथ्वीपर आजाती है । परन्तु यदि इस दशामें परिवर्तन आजाय, अर्थात् यदि सूरज, शनिश्चर या मंगल आदिकी आकर्षणशक्ति किसी कारण अधिक बढ़ जाय तो संभव है कि ऊपर फैंकी हुई वस्तु वापिस पृथ्वीपर न आवे और अधरहीमें लटकी रहे, या आकर्षक ग्रहकी ओर खिंच जाय। यह सामान्य सिद्धान्त कि समान दशामें प्राकृतिक नियम समान कार्य्य करते हैं हमारा पूर्ण अनुमान नहीं । यह भी

अपूर्ण अनुमान है। यह तो हमारा एक विश्वास है जिसपर अन्य सामान्यानु-मान अवलम्बित हैं।

विशेषानुमान (Deductive Logic) सामान्यसे विशेषपर आता है, अर्थात् एक सामान्य नियमको एक विशेष वस्तुपर घटाया जाता है। यथा—

(१) सर्व मनुष्य मरणशील हैं।
रामलाल मनुष्य है,
अत: रामलाल मरणशील है।

(२) सर्व हिन्दू वेदोंको मानते हैं।
यज्ञदत्त हिन्दू है,
अतः यज्ञदत्त वेदोंको मानता है।

सारा विशेषानुमान तुलनात्मक तर्क होता है। तुलना करनेवाली एका-ईको मध्य शब्द या पद (Middle term) कहते हैं। उपर्युक्त दो उदाहरणोंमें ‘ मनुष्य ’ और ‘ हिन्दू ’ मध्य शब्द हैं। प्रथम उदाहरणमें मनुष्य शब्द द्वारा मरणशीलता और रामलालकी तुलना की गई है और रामलाल और मरणशीलता परस्पर अनुकूल पाये गये हैं। दूसरे उदाहरणमें हिन्दू शब्दद्वारा वेदोंका मानना और यज्ञदत्तकी तुलना की गई है और वेदोंका मानना और यज्ञदत्त परस्पर अनुकूल अनुमानित हुए हैं। सामान्य और विशेष अनुमानोंकी व्याख्या करना तर्कविज्ञान (Logic) का व्यापार है। मनोविज्ञानका व्यापार केवल इतना ही है कि मन अनुमान कैसे करता है। इस विषय पर ‘ तर्क-विज्ञान ’ नामक पुस्तक शीघ्र ही लिखी जायगी।

तुलना करनेकी एकाई संवित होते हैं । हमारे ज्ञानभंडारमें संवित जितने अधिक और स्पष्ट होते हैं तर्क उतना ही ठीक होता है । संकीर्ण ज्ञानसे तर्क यथायोग्य नहीं हो सकता । यह बात यहाँ ध्यानमें रखनेके योग्य है कि जो एकाई हम अपनी तर्कनामें प्रयोग करते हैं वह हमारे आदर्शोंका परिणाम होती है । परन्तु जैसे जैसे आयु और सभ्यता बढ़ती जाती है वैसे वैसे आदर्शोंमें परिवर्तन होता जाता है । बालपनमें हमारे सुखका जो आदर्श था वह अब नहीं। भारतवासियोंका सुखका जो आदर्श है वह योरपवालोंका नहीं। जो आदर्श हिंदुओंका है वह मुसलमानोंका नहीं । जो आदर्श हब्शियोंके हैं वे सभ्य अमेरिकावालोंके नहीं । हम जिन रीति-रिवाजोंको अच्छा समझते हैं योरपवाले उनको बुरा समझते हैं और जिनको वे अच्छा समझते हैं हम उनको बुरा खयाल करते हैं । प्रत्येक व्यक्ति तर्क करते समय अपने आदर्शके अनुकूल एकाई प्रयोग करता है । यथा एक हिन्दू तर्क करता है कि—

जुआ खेलना बुरा है ।
वाजी लगाकर घुड़दौड़ करना जुआ खेलना है,
अत: वाजी लगाकर घुड़दौड़ करना बुरा है ।

परन्तु सम्भव है कि एक अँगरेज ऐसा न समझे और वाजी लगाकर घुड़-दौड़ करना उसको बुरा प्रतीत न हो ।

हम मनुष्योंमें यह तर्कशक्ति अत्यन्त उपयोगी शक्ति है। इस शक्तिके द्वारा नवीन ज्ञान सरलतापूर्वक अल्पकालमें ही प्राप्त हो जाता है । यदि हम इस शक्तिसे हीन हों तो प्रत्येक बातके लिये पूर्ववत् लम्बे अनुभवकी आवश्यकता पड़े और अनुमान लगाना एक झंझट बन जाय। परन्तु अनु-

मान करनेमें शीघ्रता करनेसे त्रुटि रह जाती है और कार्य्य भ्रष्ट हो जाता है।

तर्कके सामान्य सिद्धांतोंके अतिरिक्त जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है तीन सहायक सिद्धान्त और हैं। इनका वर्णन करना भी कुछ कम आवश्यक नहीं है। पहला सिद्धान्त है कि एक वस्तु है या नहीं है। यथा—गुलाब लाल है या लाल नहीं है। 'लाल नहीं है' इस पदमें वे सारी संभवदशायें सम्मिलित हैं जो लालके अतिरिक्त हो सकती हैं—पीला, काला, हरा, इत्यादि। हम यह नहीं कह सकते कि या तो गुलाब लाल है या हरा है। हमको यही कहना होगा कि गुलाब लाल है या लाल नहीं है। अमुक वस्तु पुस्तक है या पुस्तक नहीं है। 'पुस्तक नहीं है' में पुस्तकके अतिरिक्त सारी संभव दशायें सम्मिलित हैं। दूसरा सिद्धान्त यह है कि एक ही समयमें एक वस्तु है और नहीं है, नहीं हो सकती। एक ही समयमें एक मनुष्य जीवित और अजीवित नहीं हो सकता। या तो वह जीवित होगा या अजीवित। तीसरा सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक वस्तु सर्वदा वही है जो वह है। एक मनुष्य सर्वदा मनुष्य, एक गुलाब सर्वदा गुलाब और हरियाली सर्वदा हरियाली है चाहे वह किसी दशामें हो।

हमने विचारके संबन्धमें तीन बातोंका—संवित, निर्धारण और तर्कनाका कथन किया है। इनके विषयमें सबसे आवश्यक यह है कि एक वस्तु, प्रतिमा या संवितका दूसरोंसे क्या संबन्ध है। हमारे मनमें जो संबन्ध प्रतीत होते हैं उन्हीं पर नवीन अनुमान अवलम्बित किये जाते हैं। साधारणतया ये संबन्ध इस प्रकार होते हैं—

(१) समय—कृष्ण द्वापरमें हुए थे। बुद्ध भगवान् ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व हुए हैं।

(२) स्थान—मैं यहाँ हूँ । तुम लाहोर हो । गंगा कानपुर, प्रयाग और बनारसमें बहती है । भारतकी काया पलटनेवाले सारे युद्ध पानीपतके मैदानमें हुए थे ।

(३) कार्य्य-कारण—घड़ा मिट्टीसे बना है । यह लोहेकी कलम है ।

(४) समग्र भाग—पंजाब भारतका एक प्रांत है ।
संसारमें भारत कभी समृद्धिशाली था ।

(५) एकता—हिन्दू और मुसल्मान भाई भाई हैं ।
राम काला था और लक्ष्मण गोरा ।

(६) भिन्नता—कलम दावात नहीं है ।
कृष्ण गोरा नहीं था ।

(७) भार—घी दो सेर है ।
भारतवासी ३२ करोड़ हैं ।

(८) रचना—आगरेका ताजमहल संसारमें एक उत्तम वस्तु है ।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या जानवरोंमें तर्कशक्ति होती है ? क्या जैसे मनुष्य तर्क करते हैं वैसे ही जानवर भी तर्क करते हैं ? बहुतसे जानवरोंकी बुद्धि इतनी बढ़ी हुई होती है कि जानवरोंमें तर्कशक्ति न मानना बड़ा कठिन हो जाता है । जानवरोंके बहुत कार्य्य ऐसे होते हैं कि मनुष्य हैरान हो जाता है कि बिना तर्कके वे कैसे हो सकते हैं । शिकारी लोग कहते हैं कि कुत्ता खरगोशको देखकर सीधा उसी स्थानको नहीं भागता जहाँ खरगोश बैठा हुआ दिखता है, किन्तु उसके बिलकी ओर दौड़ता है । यहाँ यह आश्चर्यकी बात है कि यदि कुत्तेमें तर्कशक्ति न हो तो वह बिलकी ओर कैसे भागता है । कुत्तेको तो उस तरफ सीधा

भागना चाहिए जहाँ बैठा हुआ वह खरगोश पहले पहले दिखाई पड़ता है ।

इस घटनाकी व्याख्या ऐसे की जाती है कि कुत्तेने पूर्वमें कई बार खरगोशका पीछा किया था और जिस स्थानपर खरगोशको वह बैठा हुआ देखता था उसी स्थानकी ओर भागता था, परन्तु खरगोश भाग कर बिलमें घुस जाता था और प्रच्छन्न हो जाता था । अब जब कुत्तेने खरगोशको देखा तो वे सब पिछले चित्र शीघ्रतासे उसके मनमें फिर गये और अन्तका चित्र जिसमें खरगोश और बिल साथ साथ थे कुत्तेके मनमें रहा और वह बिलकी तरफ भागा ।

इसको संबंधाधीन तर्क (Associational Reasoning) कहते हैं । जानवरोंमें यही तर्क पाया जाता है । जानवरोंके मनमें वस्तुओंका जो संबंध स्थिर हो जाता है वे उसीके अनुसार कार्य करते हैं । कुत्तेके मनमें खरगोश और बिलका संबन्ध हो गया । जब वह खरगोशको देखता है तो बिलके संबन्धका चित्र सामने आजाता है और कुत्ता वैसे ही कार्य्य करता है । जानवरोंकी मानसिक शक्ति अधिकतया प्रत्यक्षसे ही परिमित रहती है, परन्तु मानुषी शक्ति अद्भुत है । इसमें भूत, भविष्यत्, और वर्त्तमान, ज्ञान और अज्ञान सब सम्मिलित हैं । मानुषी तर्कशक्ति तमाम ब्रह्माण्डकी ठेकेदार बनी हुई है और ऐसी ऐसी जटिल और पेचीदा बातोंमें उलझती है कि वर्णन नहीं हो सकता ।

रोचक प्रश्नावली।

(१) एक बालक, एक युवा और एक वृद्धके संवित बनानेमे क्या फर्क होता है ?

(२) एक देहाती गँवार वायुयानका संवित कैसा बनाता है और एक शिक्षित कैसा ?

(३) क्या सत्य प्रतिज्ञाओंसे असत्य अनुमान और असत्यसे सत्य अनुमान हो सकता है ? उदाहरण दो।

(४) क्या सार्वभौमिक संशय हो सकता है ? क्या हम प्रत्येक वस्तुमें अविश्वास कर सकते हैं ? यदि हाँ तो क्यों ?

(५) जो वस्तुयें एक ही वस्तुके बराबर होती है वे परस्पर भी बराबर होती हैं। यह सिद्धान्त कैसे प्राप्त किया जाता है ?

(६) मुसल्मानोंके प्रति हिन्दुओंके आचार, विचार और व्यवहारका इतिहास लिखो और बताओ कि उनके परिवर्तनके क्या कारण हैं ?

(७) जानवरोंकी बुद्धिके अद्भुत उदाहरण लिखो और बताओ कि क्या संबन्धाधीन तर्कसे उनकी व्याख्या हो सकती है ?

बारहवाँ अध्याय।
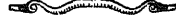
विकार।

मनके मुख्य तीन व्यापार हैं ज्ञान (Thoughts) विकार (Feelings) और संकल्प (Will)। गत अध्यायोंमें ज्ञानकी व्याख्या हो चुकी है। अब विकारका वर्णन आरम्भ करते हैं। विकार ज्ञान और संकल्पको जोड़नेवाली एक जंजीर है। किसी वस्तुका ज्ञान होता है और उससे सुख या दुःख उत्पन्न होता है। सुखसे वस्तुकी प्राप्ति और दुःखसे उसके परिहारकी इच्छा उत्पन्न होती है और यही इच्छा संकल्पात्मक प्रयत्नकी उत्पत्तिका कारण बन जाती है। इस संबन्धको इस प्रकार लिखा जा सकता है—
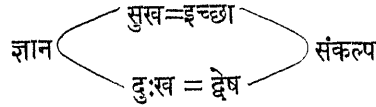
परिहारकी इच्छाको द्वेष कहते हैं।

अतः विकार आन्तरीय और व्यक्तिगत होते हैं। विकार मनमें उठते हैं और भिन्न भिन्न व्यक्तियोंमें भिन्न भिन्न उठते हैं। यदि किसी प्राकृतिक दृश्यको देखकर मेरे मनमें सुख उत्पन्न हुआ है तो वह सुख मेरा व्यक्तिगत सुख है, उसमें किसी अन्य मनुष्यका साझा नहीं। यह शक्ति बड़ी आवश्यक है। यह ज्ञानको संकल्पमें परिवर्तित करती है। यह बात विचारनेकी है कि यदि संसारमेंसे सुख और दुःख नितान्त दूर कर दिये जायँ तो संसारकी क्या दशा हो, प्रयत्न और ज्ञानकी क्या हालत हो ?

यदि सुख-दुःखके अर्थोंको बहुत विस्तरित कर दें तो विकारका लक्षण यह किया जा सकता है कि विकार मनकी सुख-दुःखावस्थाको कहते हैं। हमारा समग्र मानसिक जीवन या तो सुखमय होता है या दुःखमय। ऐसी

दशायें अत्यन्त कम होती हैं जिनमें हमको न सुख है और न दुःख । अतः हम ऐसी दशाओंको छोड़ देनेमें कोई हानि नहीं समझते ।

कुछ संवेदन गलतीसे विकार समझे जाते हैं। इस भ्रमका निवारण करनेके लिये यह बताया जाता है कि संवेदनमें विशेष स्थानका ज्ञान इस रूपमें सर्वदा रहता है कि यह संवेदन अमुक स्थानसे आया है; परन्तु विकारमें ऐसा ज्ञान नहीं होता । और दूसरे संवेदनोंसे विकार सीधे उत्पन्न हो जाते हैं ।

सुख-दुःखके लक्षण करनेकी कोई विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । प्रत्येक मनुष्य जानता है कि सुख मनकी एक रोचक वृत्ति है और दुःख अरोचक । कुछ मनुष्य यह कहते हैं कि सुख कोई वस्तु नहीं । सुख दुःखके अभावका नाम है । दूसरे इसके विरुद्ध मत रखते हैं कि सुखके अभावका नाम दुःख है । यह एक विवादास्पद विषय है, अतः इसको हम किसी बड़ी पुस्तकके लिये रख छोड़ते हैं । यहाँ इस बात पर विचार करना है कि सुख और दुःख कैसे होते हैं । यह जाननेके वास्ते हम उत्तेजककी परीक्षा करते हैं ।

प्रथम, उत्तेजककी अधिकताका प्रभाव विकारोंपर बहुत पड़ता है। यदि एक नारंगी—जो साधारण खट्टी हो—खाई जाय तो रोचक प्रतीत होती है और सुख उत्पन्न होता है । किन्तु यदि अधिक खट्टी वस्तु खाई जाय तो अरोचक प्रतीत होती है और दुःखका अनुभव होता है । इसी प्रकार अधिक गन्ध, प्रकाश और शब्दसे भी दुःख उत्पन्न होता है । यदि हम इसका एक सामान्य सिद्धान्त बनावें तो यह कह सकते हैं कि साधारण उत्तेजकसे सुख और असाधारणतया अधिक उत्तेजकसे दुःख होता है। अर्थात् साधारण उत्तेजकसे हमारे ज्ञानतन्तुओंको जो कार्य्य करना पड़ता

है वह सुखदायक होता है और असाधारणतया अधिक उत्तेजकसे हमारे ज्ञानतन्तुओंपर जो धींगाधींगी की जाती है उससे दुःख प्रतीत होता है।

दूसरे, उत्तेजकके आकारका प्रभाव विकारोंपर पड़ता है। सुख या दुःखके उत्पन्न होनेके लिये यह आवश्यक है कि उत्तेजक किस आकारमें उपस्थित होता है। यदि कई प्रकारके बाजे एकसंग बज रहे हों तो शब्दोत्तेजकके आकारके अनुकूल सुख या दुःख उत्पन्न होगा। यदि सारे बाजे मिलकर एक स्वर-तालमें बजते हों तो सुख होगा, किन्तु यदि अनमेल बाजे बज रहे हों तो दुःख होगा। इसी प्रकार पके हुए और अधपके भोजनके, तथा चिकनी और खुरदरी वस्तुओंके प्रभाव जानो।

तीसरे, उत्तेजकके प्रकारका प्रभाव विकारोंपर पड़ता है। यदि कोई उत्तेजक प्रस्तुत किया जाय तो सुखवान् होगा। परन्तु यदि उस उत्तेजकको अधिक समय तक जारी रक्खा जाय तो वह दुःखवान् बन जायगा। यह हम पूर्वमें बता आये हैं कि इंद्रियाँ थक जाया करती हैं। इंद्रियाँ जबतक नहीं थकतीं सुखानुभव होता है, किन्तु इंद्रियोंके थक जानेपर दुःखानुभव होने लगता है। ऐसी दशामें यदि इंद्रिय किसी एक विषयसे थक गई हो तो दूसरे प्रकारका उत्तेजक उपस्थित करना चाहिये। ऐसा करनेसे दुःख नहीं होगा, किन्तु सुख होगा। यदि तुम आलू खाते खाते थक गये हो तो गोभी आदि कोई अन्य सब्जी खाओ। इस नियमानुसार उत्तेजक परि-वर्तनसे सुखकी मात्रा बहुत समय पर्यन्त बढ़ाई जा सकती है और दुःख कम किया जा सकता है।

चौथे, एक उत्तेजकके ऊपर दूसरा उत्तेजक आ उपस्थित होता है और उसका विकारों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि हमारे चोट लगी हुई हो, उससे दुःखानुभव हो रहा हो और सुंदर मधुर गानकी तान हमारे श्रवणमें

पड़ जाय तो कमसे कम अल्प कालके लिये वह वेदना अवश्य भूल जाती है और हम गानसे उत्पन्न होनेवाले सुखमें लीन हो जाते हैं । यदि हम सुखपूर्वक कुछ विचार कर रहे हों और उस समय हमें किसीके कातर स्वरका कारुणिक शब्द सुनाई पड़ जाय तो हृदय सहसा उधर ही खिंच जाता है और हमको दुख आघेरता है । 'रंगमें भंग' इसीको कहते हैं ।

पाँचवें, अभ्यास-वश भी सुख दुःखका अनुभव होता है । जो मनुष्य शराब, अफीम, भंग आदि मादक द्रव्योंके सेवन करनेके अभ्यासी हो जाते हैं यदि उनको उनकी अभ्यासकी वस्तु न मिले तो वे महान् दुःख प्रतीत करते हैं ।

विकारोंका सामान्य वर्णन करनेके पश्चात् अब हम उनके प्रकारोंका उल्लेख करते हैं। यदि हम उन स्रोतों पर ध्यान दें जिनसे विकार उत्पन्न होते हैं तो यह कार्य्य भली भाँति हो जाता है । विकारोंके दो स्रोत हैं, एक संवेदन और दूसरा विचार । प्रथम प्रकारके विकार संवेदनोंसे उत्पन्न होते हैं । पाँचों इंद्रियों द्वारा जो भिन्न भिन्न प्रकारके संवेदन आते हैं वे कभी सुखकारक और कभी दुःखकारक होते हैं । सुंदर स्वादिष्ट भोजनोंसे और गुलाब केवड़ेके इत्रोंसे सुख और कड़वी कसैली, बेढंगी और दुर्गन्धकारिणी चीजोंसे दुःख प्रतीत होता है । स्पर्शका संवेदन भी मनमें रोचक और अरोचक विकार पैदा करता है । गरमीकी ऋतुमें ठंडी वस्तु और शरद् ऋतुमें गरम वस्तुका स्पर्श रोचक होता है और इनके विपरीत अरोचक । कोमल, चिकनी और नरम वस्तुओंका स्पर्श भी सुख-दायक प्रतीत होता है । शब्दसंवेदनसे जो सुख या दुःख होता है वह शब्दके सुरीलेपन और बेतुकेपन पर निर्भर है । यदि शब्द सुरीला है तो विकार सुख है और यदि शब्द स्वरतालरहित केवल शोर है तो विकार दुःख है । मन पर सुर, ताल, ठेका, चलत, दुगन, और ऊँचे नीचे शब्दोंका प्रभाव बहुत

पड़ता है। दृष्टिसे दुःखकी अपेक्षा सुख अधिक मिलता है। रंगोंके अनेक मिलापोंसे हम बड़ा सुख उठाते हैं। । परन्तु एक बातका विचार रखना चाहिये कि संवेदन-विकार केवल सरल ही नहीं होते जटिल भी होते हैं। इन पर पूर्व विकारोंका असर पड़ता है और वह असर वर्तमान विकारोंको परिवर्तित कर देता है। फ्रांसकी सभ्य नंगी रमणियोंके चित्र देखकर एक कामीके दिलमें सुख और एक विरक्तके दिलमें दुःख उत्पन्न होता है। विवाहमें गालियाँ भी भली मालूम होती हैं।

दूसरे प्रकारके विकार विचारोंसे उत्पन्न होते हैं और इनको क्षोभ कहते हैं। संवेदनोंसे उत्पन्न होनेवाली मनकी रोचक और अरोचक दशा सरल होती है, किन्तु विचारोंसे उत्पन्न होनेवाले क्षोभ बहुत जटिल होते हैं। संवेदन-विकार प्रत्यक्ष उत्तेजकोंसे और और क्षोभ पुनर्प्रत्यक्षोंसे पैदा होते हैं। संवेदन-विकार उत्तेजकके उपस्थित रहने पर स्थित रहते हैं और उत्तेजकके दूर हो जाने पर दूर हो जाते हैं। यथा—एक बालक चोटके अरोचक विकारको अल्पकालहीमें भूल जाता है। परन्तु क्षोभ न शीघ्र उठते हैं और शीघ्र दबते हैं। क्षोभके संवर्धन और शान्ति दोनोंके लिये समयकी आवश्यकता है। यदि एक बालक भयभीत हो जाता है तो उसका भय चोटके दुःखके समान शीघ्र दूर नहीं होता। किन्तु बहुधा ऐसा होता है कि वह बालक उस डरसे फिर कभी मुक्त नहीं होता और जीवनसे ही मुक्ति पा जाता है! भय, क्रोध, दया, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, घृणा आदि मनके विकार क्षोभ कहाते हैं और मनुष्य-जीवनमें एक बड़ा भाग लेते हैं।

संवेदन-विकारोंका और क्षोभोंका परस्पर एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। संवेदन-विकारोंसे जो प्रतिमायें उठती हैं उनसे क्षोभ बढ़ता

है और क्षोभसे फिर संवेदन-विकार बढ़ जाता है। यथा—एक पुरुषकी अंगुली रेलगाड़ीमें कुचल जाती है और उससे उसे दुःख होता है। वह यह खयाल करता है कहीं विकार और न बढ़ जाय। इस खयालसे भयका क्षोभ बढ़ जाता है कि कहीं अंगुली कटवानी न पड़े, कहीं हाथ कटवाना न पड़े। इस भयसे अंगुलीमें दुःख बढ़ जाता है। दुःखसे फिर भय और भयसे फिर दुःख बढ़ता है यहाँ तक कि जब रोग शान्त हो जाता है तब कहीं शान्ति आती है।

क्षोभको कार्य्यमें परिणित करनेसे भी क्षोभ बढ़ता है और शान्त नहीं होता। बालकोंको जब क्रोध उठता है तो कहा जाता है कि दस तक गिन लो, फिर कोई कार्य्य करो। नाटक खेलनेवाले नट कहा करते हैं कि जब वे अभिनय करते हैं तब क्षोभ अनुभव करते हैं, अन्यथा वे ठीक ठीक अभिनय नहीं कर सकते। प्रत्येक क्षोभका शरीर पर असर पड़ता है और भिन्न भिन्न क्षोभोंके प्रभाव शरीर पर भिन्न भिन्न पड़ते हैं। जब मनुष्यको क्रोध आता है तो उसकी आँखें और मुख लाल हो जाते हैं, शरीर काँपने लग जाता है, शब्द जोरसे निकलता है या नहीं निकलता। जब मनुष्यहृदयमें प्रेम जागता है तो मुख और नयनोंकी चमक कुछ अद्भुत हो जाती है और ताड़नेवाले तत्काल ताड़ जाते हैं कि अब प्रेम-देवकी कृपा हो गई है। घृणासे माथेमें बल पड़ जाते हैं, नाक सिकुड़ने लग जाता है और मुख घृणास्पद वस्तुसे मुड़ने लग जाता है। शोकमें मुख पर उदासी छा जाती है और वह नीचेकी ओर झुक जाता है। ठंडे साँस निकलने लगते हैं। विद्यार्थियोंको चाहिये कि वे अन्य क्षोभोंका निरीक्षण करें और लिखें कि किस किस क्षोभके क्या क्या प्रभाव शरीर पर पड़ते हैं। इस विषयमें उपन्यास, नाटक और काव्योंसे बड़ी सहायता मिलती है।

क्षोभोंका प्रभाव हमारी विचारशक्तिपर भी पड़ता है । साधारण क्षोभसे हमारी विचार-योग्यता बढ़ जाती है किन्तु मनमें अधिक क्षोभ उठनेसे सारे विचार हवा हो जाते हैं और हम किं-कर्तव्य-विमूढ बन जाते हैं। यदि किसी व्यक्तिके मनमें साधारण भय उत्पन्न हो जाता है तो वह भयका कारण और निवारण शीघ्र विचार लेता है । किन्तु यदि भय अधिक हो जाता है तो विचारशक्ति एकदम स्थिर सी हो जाती है और भयसे मुक्ति प्राप्त करनेका कोई उपाय नहीं सूझता । जैसे एक सोया हुआ मनुष्य शेरकी दहाड़ सुनकर सहसा जाग उठे और इतना भयभीत होजाय कि उठकर भाग भी न सके। ऐसी दशामें क्षोभ इतना प्रबल होता है कि हाथ पैर फूल जाते हैं और मनुष्य बिल्कुल मूर्खसा बन जाता है। कई वक्ता बोलते बोलते क्षोभके वशमें ऐसे आजाते हैं कि इस बातका उनको ध्यान ही नहीं रहता कि वे क्या कह रहे हैं । साधारण क्षोभ विचारोंमें बड़े सहायक होते हैं । एक वकील जिसको अपने मवक्किलसे सहानुभूति होगी कि इसका दावा सत्य है वह उसकी वकालत अच्छी तरह कर सकेगा । और वह वकील जो अपने मवक्किलको असत्य समझता होगा उतनी अच्छी तरह वकालत नहीं कर सकेगा। बड़े बड़े नामी वकील बैरिस्टर और डाक्टर जब उनके ऊपर आ पड़ती है तो घबरा जाते हैं और दूसरोंकी सहायता लेते हैं । अपने ऊपर पड़नेसे उनके मनमें क्षोभकी अधिकता हो जाती है और विचारशक्ति निर्बल पड़ जाती है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्षोभ कितने प्रकारके होते हैं।क्षोभोंको श्रेणीवद्ध करना अत्यन्त कठिन कार्य्य है । प्रथम तो क्षोभ बहुत जटिल होते हैं, दूसरे एक दूसरेका परस्पर इतना घनिष्ठ संबन्ध है कि उनका अलग अलग करना कोई आसान कार्य्य नहीं । प्राचीन मनोविज्ञानपंडित क्षोभोंको विभाजित करनेका प्रयत्न किया करते थे, परन्तु नवीन विद्वान्

ऐसा नहीं करते । जिस क्षोभको आज एक श्रेणीमें रखते हैं सम्भवतः कल उसीको दूसरी श्रेणीमें रखना पड़ता है । हम श्रेणी बनानेका साहस करते हैं किन्तु उसे पूर्ण नहीं समझना चाहिये । विद्यार्थियोंको स्वयम् यह विचार करना आवश्यक है कि कौन क्षोभ किस श्रेणीमें रक्खा जाय और श्रेणियाँ किस आधारपर बनाई जायँ ।

क्षोभोंको तीन श्रेणियोंमें बाँटते हैं—स्वकीय (Egoistic), परकीय (Altruistic) और ज्ञानात्मक (Intellectual) । स्वकीय क्षोभ वे होते हैं जो स्वार्थसिद्धिमें प्रोत्साहन देते हैं । वह प्रत्येक क्षोभ इस विभागमें सम्मिलित है जो अपनी उन्नति करनेकी, या हानि-दायक बातोंसे वचनेकी, उत्तेजना देता है । परकीय क्षोभ वे होते हैं जो दूसरोंकी सहायता करनेमें उत्तेजित करते हैं । परकीय क्षोभोंमें सहानुभूति सबसे उत्तम है । परकीय क्षोभोंके ही आधारपर सभ्यताका मंदिर खड़ा है । अस्पताल, पागलखाने, धर्मशालायें, दानशालायें आदि सर्वहितकारी संस्थायें दूसरोंके प्रति सहानुभूतिवश ही बनती हैं । परन्तु हम दूसरोंके प्रति सहानुभूति तब तक नहीं कर सकते जबतक हम अपनेको उनकी दशामें नहीं रख लेते और उनके मनोभावोंको अपने मनोभाव नहीं बना लेते । जैसे जैसे हम शिक्षित होते जाते हैं वैसे वैसे हम दूसरोंसे सहानुभूति अधिक करते जाते हैं और ‘ वसुधैव कुटम्बकम् ’के सिद्धान्तको समझते जाते हैं ।

परन्तु दूसरोंकी दशासे सहानुभूति करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम अपनेको बहुधा उनकी दशामें रक्खें, उन लोगोंसे मिलें और उनकी हालतका स्वाध्याय करें । जो संसारविरक्त लोग गिरि-कंदराओंमें रहते हैं उनकी सहानुभूति संसारके प्रति नहीं हो सकती । कंजूस, विरक्त और साहूकारोंके नाजसे पले हुए बालक सहानुभूतिसे हीन होते हैं । इन

व्यक्तियोंसे यह आशा नहीं की जा सकती कि ये दूसरोंके दुःखमें दुःखी और सुखमें सुखी होंगे । दूसरोंके दुःख-सुखमें वे ही दुखी या सुखी हो सकते हैं जो दूसरोंसे मिलते रहते हैं, उनकी दशा देखते रहते हैं और उसपर बहुधा विचार किया करते हैं । फिर उस दशाको अपने ऊपर घटाते हैं और उनके दुःखको अपना दुःख और उनके सुखको अपना सुख समझने लगते हैं । इस प्रकार परकीय क्षोभ स्वकीय बन जाते हैं ।

स्वकीय क्षोभोंकी प्रकृति स्वाभाविक उत्तेजनासे ही होती है और परकीय क्षोभोंका संबन्ध दूसरोंसे होता है । दूसरे ये कोई न कोई वास्तविक (Concrete) वस्तु होते हैं । हमारी सहानुभूति या तो किसी मनुष्यसे या किसी जानवरसे या किसी सभा समाजसे होती है । अधिकांश जानवरोंमें भी ये दोनों प्रकारके क्षोभ पाये जाते हैं, परन्तु ज्ञानात्मक क्षोभ केवल मनुष्योंमें ही उठते हैं । ज्ञानात्मक क्षोभोंका संबन्ध वास्तविक संसारके स्थानमें विचार—संसारसे होता है । बालकोंमें ज्ञानात्मक क्षोभोंकी आशा नहीं की जा सकती । ये युवावस्थामें उठते हैं और शिक्षित पुरुषोंमें अधिक होते हैं । इनका संबन्ध विचारोंसे है । जिसमें विचारशक्ति अधिक पुष्ट होती है उसीमें इस प्रकारके क्षोभ अधिक उठते हैं और वही बुद्धि, सौन्दर्य्य और आचारको समझ सकता है ।

बुद्धिसंबन्धी क्षोभोंमें जो संचलित शक्ति है वह वर्त्तमानसे अधिक जाननेकी इच्छा है । जब यह इच्छा परम सीमातक पुष्ट हो जाती है उस समयका क्षोभ ज्ञानको ज्ञानके ही लिये (Knowledge for knowledge's sake) प्राप्त करना हो जाता है । अधिकांश मनुष्य किसी बातके जाननेकी इच्छा इसलिये किया करते हैं कि इस ज्ञानसे अमुक लाभ होगा । परन्तु कुछ महानुभाव ऐसे भी हैं जो यह नहीं देखते

कि इस ज्ञानसे क्या लाभ होगा । वे तो ज्ञानको केवल ज्ञानके वास्ते प्राप्त करते हैं चाहे उससे कोई लाभ हो या न हो । एक बातको जाननेकी इच्छासे ही वे एक बातके पीछे पड़े रहते हैं और उसको मालूम करके ही छोड़ते हैं । इसी ज्ञानपिपासाके कारण संसारमें ज्ञानकी महती उन्नति हुई है ।

बुद्धिके कार्यका अन्त होनेपर या अन्तकी आशामें सुखकारी बुद्धि-संबंधी क्षोभ उत्पन्न होता है । गणितके प्रश्न, नक्षत्रोंकी चाल, यंत्रविद्याके सिद्धांतोंका आविष्कार स्वयम् सुखदायक न भी हो, परन्तु जब हम किसी प्रश्नको हल कर लेते हैं या किसी सिद्धांतको जान लेते हैं उस समय हमें सुखानुभव होता है और इस आशा पर भी सुखानुभव होता है कि यह प्रश्न अब मालूम हो जायगा । बुद्धिसंबंधी कार्यके पूर्ण होनेपर या उसके पूर्ण होनेकी आशामें सुखके विकार उठते हैं । बहुधा ऐसा भी देखा जाता है कि बुद्धिके प्रयोगमें अत्यन्त परिश्रम उठाना पड़ता है और परिश्रमी हताश होकर कार्य्य छोड़ बैठता है । परन्तु यदि सफलताकी कुछ आशा बँधती है तो फिर कार्य्यारम्भ कर देता है । ज्ञानात्मक क्षोभोंका प्रभाव शरीर पर इतना प्रकाशित नहीं होता जितना अन्य क्षोभोंका, जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं । गणितका प्रश्न कितना ही कठिन क्यों न हो परन्तु कोई मनुष्य उसको हल करते समय इतना विह्वल नहीं होगा जितना वह पुरुष जिसको जीवन-भय हो या जिसके हृदयमें दुःखित मित्रको देख कर करुणा जाग पड़ी हो ।

जब साहित्यका विद्यार्थी किसी नवीन साम्यको देखता है जहाँ वस्तु परस्पर नितान्त भिन्न भिन्न प्रतीत होती थी तो उसके ज्ञानात्मक क्षोभ उत्तेजित हो जाते हैं और उसको सुखानुभव होता है । महाकवि गोसाईं

तुलसीदासजीकी नीचे उद्धरित पंक्तियोंको पढ़कर देखो कि वस्तुओंमें परस्पर कितनी विभिन्नता है और किस प्रकार किन बातोंकी समता जाहिर की गई है।

दामनि दमक रही घन माहीं,
खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं।
बूंद अघात सहें गिरि कैसे,
खलके वचन संत सहें जैसे।

इत्यादि। यह समग्र स्थल पढ़ने योग्य है।

सौंदर्य्यसंबन्धी क्षोभोंको हम ललित क्षोभ कहेंगे। ललित क्षोभ सुन्दरता या सुन्दरताके विरुद्ध प्रत्यक्षोंपर उठनेवाले रोचक या अरोचक विकार होते हैं। ललित क्षोभोंमें निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं।

ललित क्षोभोंके लिये कोई प्रयोजन नहीं होता। सौंदर्य्यसे जो क्षोभ उठें वे पवित्र होने आवश्यक हैं। इस क्षोभसे आनन्द तो हो किन्तु यह इच्छा न हो कि सुंदर वस्तुको ग्रहण कर लिया जाय। हम बागमें एक सुंदर गुलाबका पुष्प देखते हैं और हमारे मनमें आनन्दका क्षोभ उत्पन्न होता है। पवित्र ललित क्षोभ उसको कहते हैं जिसमें उस फूलको तोड़नेकी इच्छा न हो और भविष्यमें किसी प्रकारका लाभ प्राप्त करनेका कोई अभिप्राय न हो। सामयिक आनन्द ही हमारे मनमें हो और किसी प्रकारका ख्याल बिल्कुल न हो। मन नितान्त निष्क्रिय अवस्थामें होकर आनन्दका पान करे। दूसरे, ललित क्षोभको हम अन्य व्यक्तियोंके संग भी भोग सकते हैं। यथा—सुंदर चित्र, मनोहर प्राकृतिक दृश्य, उत्तेजक गान आदि एकसे अधिक व्यक्तियोंको आनन्द दे सकते हैं।

सौंदर्यका भाव सार्वजनिक है। सर्व देशों, सर्व समयों और सर्व अवस्था-ओंके स्त्रीपुरुष सौंदर्यसे आनन्द लाभ करते हैं। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो प्रकृति देवीकी सुंदर मनोहर रचनाओंको देखकर मुग्ध न होता हो। प्रत्येक बालक चमकदार रंगोंको पसंद करता है। हब्शी लोग विचित्र पोशाक पहिनते हैं। अर्ध सभ्य जातियाँ भद्दे आभूषण धारण करती हैं और शरीर पर नाना प्रकारकी चित्रकारी करती हैं। सभ्य समाज नित्य नवीन फैशन बदलता रहता है। ये सब सौंदर्य्यकी कामनाके परिणाम हैं। इसी सुंदरताकी इच्छासे प्रेरित होकर आज भारतकी सुंदरियाँ विचित्र जीव बन रही हैं। कान, नाक, हाथ, पैर, गला, छाती आदि कोई अंग उनका बाकी नहीं जहाँ कोई न कोई आभूषण न हो। सोनेका नहीं तो चाँदीका सही, चाँदीका नहीं तो पीतल-काँसेका सही और यह भी नहीं तो कौड़ि-योंका ही सही। आभूषणोंकी इस अनुचित चाहने इतना जोर पकड़ रक्खा है कि स्त्रियोंका स्वास्थ्य और सुंदरता बिगड़कर रोग और कुरूपता छारही हैं और देशके धनका हानिकारक प्रयोग किया जा रहा है। स्वधनका जैसा हानिकर प्रयोग भारतमें किया जा रहा है वैसा प्रयोग संभव नहीं कि कोई अन्य सभ्य देश कर रहा हो और इस तरह देशके करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष घिसकर व्यर्थ नष्ट हो जाते हों। यदि देशको इस भयंकर हानिसे बचाना है तो स्त्रीशिक्षाका प्रचार बढ़ाना होगा।

ललित क्षोभोंका विच्छेद करके देखने पर विदित होता है कि ललित क्षोभ दो इंद्रियोंसे आते हैं। ये दो इंद्रियाँ चक्षु और कर्ण हैं। इन दोनों इंद्रियोंके विषयोंसे तत्काल आनन्द प्राप्त हो सकता है। यथा—जब हम सूर्य्यास्तका सुंदर दृश्य देखते हैं या मुग्ध करनेवाला गान सुनते हैं तो हमको तत्काल आनन्दानुभव होता है। परन्तु केवल संवेदनों द्वारा जो आनन्द आता है वह नीची श्रेणीका होता है। बालक, हब्शी और

मूर्ख लोग रंगोंसे आनन्द उठाते हैं । वे ऊँची श्रेणीके आनन्दको नहीं जानते । उच्च प्रकारका आनन्द विचारोंसे आता है । जब हमारी शक्ति शिक्षा और विज्ञानसे पुष्ट हो जाती है उस समय हम बारीकसे बारीक भेदोंको जानने लग जाते हैं और वास्तविक आनन्द उठाने लगते हैं । एक एक चित्र दश दश सहस्र मुद्रा तकको बिक जाता है । यदि वही चित्र एक गँवारको दिखाया जाय तो संभवतः वह उसे एक कौड़ीका भी न समझे और खरीदनेवालेको महामूर्खकी पदवी दे डाले । एक एक गानको सुननेके लिये लोग बड़ा श्रम और व्यय सहन करते हैं । यदि किसी मूर्खको ऐसा गाना सुनाया जाय तो संभवतः वह मुफ्त सुनना भी पसंद न करे ।

संवेदन तत्त्वोंमें भेद मालूम करना, वर्ग बनाना और क्रमानुसार बाँधना बुद्धिके कार्य्य हैं । एक मूर्ख पुरुषकी अपेक्षा एक शिक्षित व्यक्ति प्राकृतिक दृश्योंमें अधिक सौंदर्य देखता है । शिक्षित यात्री अपनी यात्रासे जितना अधिक लाभ उठा सकता है उतना अशिक्षित यात्री नहीं उठा सकता । मूर्ख, ज्ञानहीन, अशिक्षित व्यक्तिकी अपेक्षा एक शिक्षित पुरुष जहाँ कहीं जायगा और जो कुछ कार्य्य करेगा उसीमें वह अधिक आनन्दानुभव करेगा ।

ललित क्षोभोंमें पहला तत्त्व संवेदन, दूसरा बुद्धि और तीसरा कल्पना या आदर्श है । जिस वस्तुके संग कुछ कल्पनाका संबंध होता है वह अधिक आनन्दकारी होती है । चित्तौर और प्राचीन देहलीके खंडहर देखकर चित्तमें जो भाव उत्पन्न होते हैं वे भाव किसी अन्य स्थानपर नहीं उठ सकते । मैं एक बार थानेसर गया था । वहाँ कुरुक्षेत्रके तालावको देखकर जो जो भाव मेरे मनमें उठे वे अन्य किसी तालावके देखनेसे कभी नहीं उठे । त्रिवेणीके स्नानमें जो आनन्दकी लहर आई वह रावी नदीके स्नानमें कभी नहीं आई थी । रोहतककी एक एक ईंटमें जो आनन्द मुझे प्रतीत

होता है वह लाहोर, देहली, आगरा, कानपुर और प्रयाग सबको मिलाकर भी दिखाई नहीं देता। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" फ्रान्ससे लौटे हुए भारतीय योद्धा कहते हैं कि हमको पेरिस जैसे सुंदरतम और सुखद नगरमें भी भारतकी गँवारू टूटी फूटी झोपड़ियाँ स्मरण हो आती थीं और चित्त सहसा बेचैन हो जाता था। मातृभूमिका एक एक रोड़ा हमारे जीवनसे संबन्धित है और हमारे जीवनका एक उत्तम इतिहास है। उसको देखकर तत्काल याद आ जाता है कि यहाँ हम अपने नये नये मित्रोंकी संगतिमें 'आँख मिचौनी' खेला करते थे, यहाँ बैठ कर कहानियाँ कहा करते थे, इत्यादि अनेक घटनायें आँखोंके सामने फिर जाती हैं। यह बात संसारके सुंदरसे सुंदर गगनभेदी महा मंदिरोंमें नहीं मिल सकती। यह अपूर्व आनन्द तो हमारे कल्पनासंबंधोंमें है और यह उन्हीं वस्तुओंसे प्राप्त हो सकता है जहाँ हमारी कल्पनाका कुछ संबन्ध होता है।

सौन्दर्यका परिमाण (Standard) परिवर्तित होता रहता है। भिन्न भिन्न देशोंमें और भिन्न भिन्न समयोंमें यह सुंदरताका परिमाण भिन्न भिन्न होता है। यदि हम किसी अजायब घरमें जावें और वहाँ प्राचीन और नवीन चित्रोंका स्वाध्याय करें तो विदित हो जायगा कि देश और कालके भेदसे चित्रोंमें कितना भेद है। एक देश जिन रहन-सहनों और वस्त्राभूषणोंको सुंदर समझता है दूसरा देश उनको वैसा नहीं समझता। एक शताब्दीमें जो बातें सुंदर खयाल की गई थीं वे दूसरी शताब्दीमें बिल्कुल बदल गईं। दो चित्रोंको लो, एक योरपकी लेडीका और दूसरा भारतकी रमणीका। दोनोंको पास पास रखकर दोनोंकी तुलना करो और देखो कि देशभेदसे वस्त्राभूषणोंमें कितना भेद है। कुछ ही समय हुआ जब लोग सिरके पिछले भाग पर बाल रखाया करते थे, परन्तु आज सिरके अगले भाग पर बाल रखाये जाते हैं। पहले भारतवासी पगड़ी बाँधा करते

थे और जामा पहिना करते थे, परन्तु आज नवयुवक कोट पैण्ट पहिनते और फैल्ट कैप लगाते हैं। इस प्रकारके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि देश या कालभेदसे सौंदर्यके परिमाणमें बहुत अंतर पड़ जाता है। एक देश या कालके सौंदर्यपरिमाणपर उस देश या कालके शिक्षित बुद्धिमान पुरुषोंका बहुत प्रभाव पड़ता है।

ललित क्षोभोंके दो प्रकारोंका उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथम प्रकारके क्षोभ उन अद्भुत (Sublime) वस्तुओंके अनुभवसे उठते हैं जिनको अधिकृत करना हमारी शक्तिके बाहर होता है और जो अनन्त और बुद्धिके विषयसे परे होती हैं। यथा—ईश्वर, समुद्र और आकाश। यदि एक व्यक्ति समुद्रके किनारे खड़ा हो कर उस पर दृष्टि डाले तो सम्भवत: उसके मनमें अद्भुतताका क्षोभ उठ आयगा। यह वस्तु महान् प्रतीत होती है, जहाँ तक दृष्टि जाती है जल ही जल दिखाई पड़ता है और दृष्टिसे परे भी समुद्र ही प्रतीत होता है। ऐसी दशामें जो क्षोभ उठता है वह अद्भुतताका उठता है। इसी प्रकारके क्षोभ चित लेटने पर और आकाशकी ओर देखनेसे उत्पन्न होते हैं। इन्हींके समान क्षोभ ईश्वर पर विचार करते हुए एक योगीके चित्तमें पैदा होते हैं और मनुष्यका मन अद्भुतता, महत्ता और प्रतिष्ठासे भर जाता है।

दूसरी प्रकारके क्षोभ भद्देपन (Ludicrous) पर उठते हैं। ये क्षोभ अद्भुत क्षोभोंसे नितान्त विपरीत होते हैं और यह छुटाई, अनमेलता और भद्देपनके अनुभव पर उठते हैं। इस प्रकारके विकार एक बावने व्यक्तिको देखकर, अनमेल बाजेको सुनकर और अन्य भद्दी बातोंके अनुभव पर उत्पन्न हो जाते हैं। भद्देपनसे जो क्षोभ उठते हैं उनको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। बहुतसे मनुष्य अपने आपको बहुत खींचते हैं और समझते हैं

कि वे ही सब कुछ हैं । वे दूसरोंको देखकर उनपर हँसा करते हैं और ऐसी बात कहा करते हैं जो हृदयको चीरती चली जाती है । इसको ये महानुभाव हास्यके नामसे पुकारा करते हैं । दूसरी हँसी वह होती है जिसमें न तो दूसरों पर हँसा जाता है और न किसी व्यक्तिको छोटा समझा जाता है । यह हँसी नाटकों, खेल-तमाशोंमें देखी जाती है और उस समय उठा करती है जब कोई विदूषक रंग विरंगे बेजोड़ बेमेल कपड़े पहिन कर रंगशालामें आता है और ऐसा ही भद्दा नाच रंग दिखाता है ।

आचार-क्षोभों (Moral emotions) का संबन्ध मनुष्यकी क्रिया-ओंसे होता है और उन पर अच्छाई या बुराईका निर्धारण किया जाता है कि कौन क्रिया अच्छी है और कौन बुरी है । सौंदर्य्यका संबन्ध अच्छाई या बुराईसे नहीं । सौंदर्य्यसे ललित क्षोभ उत्पन्न होते हैं जैसे कि हम उपर वर्णन कर आये हैं । अतः सौंदर्य्यसे आचार-क्षोभ पैदा नहीं होते । आचार-क्षोभ एक प्रकारसे मनुष्यकार्योंके न्यायाधीश होते हैं और वे उनकी अच्छाई और बुराईका निर्णय करते हैं । जानवरोंके कार्योंमें कोई आचार-गुण नहीं होता और उनकी क्रियायें हमारे मनमें आचार-क्षोभ पैदा नहीं कर सकतीं । जानवरोंकी क्रियाओंको अच्छा या बुरा नहीं कह सकते । हम अच्छा या बुरा विशेषण मनुष्य कार्य्य-पर ही लगा सकते हैं; परन्तु अवस्था-भेदसे मनुष्योंके कार्य्य भी भिन्न भिन्न क्षोभ उत्पन्न करते हैं । आचार-कार्य्य संकल्पसे होने आवश्यक हैं । जिस कार्य्यके करनेमें मनुष्यका संकल्प नहीं होता उस कार्य्यका उत्तरदाता वह व्यक्ति नहीं समझा जाता । यदि क्रिया करनेमें मनुष्य स्वाधीन न हो, यदि किसी कार्य्यको करने या न करने या अन्य बात करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र न हो तो उस मनुष्यका कार्य्य अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता । हम बालकों, अत्यन्त वृद्धों, पागलों, पराधीनों और पशु-

ओंको उनकी क्रियाओंका उत्तरदाता नहीं ठहराते और न उन पर अच्छा या बुरा शब्द लगाते हैं। आचार-क्षोभ कर्त्ताके स्वभाव या इच्छाके अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं।

अन्य क्षोभोंकी अपेक्षा आचार-क्षोभ निराले होते हैं। ये मनुष्य-कार्योंकी अच्छाई या बुराईका निर्णय करते हैं और उनको नियमबद्ध भी करते हैं कि अमुक कार्य्य करना चाहिये और अमुक नहीं करना चाहिये। इससे मनुष्यके कर्तव्य स्थिर होते हैं। कर्तव्य करनें चाहिये और अकर्तव्य छोड़ देनें चाहिये। कर्तव्यपालनसे सुख और अकर्तव्य करनेसे दुःख और पश्चात्ताप होता है। यह कोई नियम नहीं है कि कर्तव्य पालनेसे सर्वदा सुख ही हो; बहुधा अत्यन्त दुःख भी उठाना पड़ता है। परन्तु हम अपने आचार स्वभावानुसार विचार करके निश्चय करते हैं कि कौन कर्म करना विहित है और कौन कर्म करना धर्म-विरुद्ध है; फिर चाहे उससे सुख हो और चाहे दुःख।

आचार-क्षोभोंके अन्तर्गत धार्मिक और अन्तःकरणके क्षोभ भी सम्मिलित हैं। इनकी व्याख्या करना आचारशास्त्रका कार्य्य है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि आचार-क्षोभ—जो अन्य क्षोभोंसे इतने निराले हैं—मनुष्यजातिमें किस प्रकार संवर्धित हुए। इसका उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। कुछ विद्वानोंका मत है कि आचार-क्षोभ स्वार्थसे उत्पन्न हुए हैं। आरम्भिक मनुष्योंने देखा कि जंगली जानवर उनको बहुत सताते हैं और वे अलग अलग उनका मुकाबिला नहीं कर सकते। अतः मनुष्य मिलकर रहने लगे और अपने दुश्मनोंका मुकाबिला मिलकर करने लगे। जब कभी किसीने यह नियम तोड़ा तो उसको बुरा परिणाम भुगतना

पड़ा। यही नियम धीरे धीरे आचारका मूल सिद्धान्त बन गया और अन्य नियम इसी सिद्धान्तसे निकल आये कि पड़ोसियोंके संग ऐसा बरताव करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये।

दूसरोंका मत है कि मनुष्यमें ईश्वरने एक विशेष शक्ति 'अन्तःकरण' प्रदान की है जो अच्छाई और बुराईकी पहिचान कर सकती है। कुछ सज्जन एक तीसरी सम्मति रखते हैं और कहते हैं कि जैसे बिल्लीमें चूहेके पीछे भागनेका स्वभाव अपने आप होता है वैसे ही अच्छाई बुराईको जाननेकी शक्ति मनुष्यमें स्वतः होती है। जैसे वया पक्षीको कोई घोंसला बनाना नहीं सिखाता किन्तु वह स्वभावतया ही जानता है, इसी प्रकार मनुष्यमें अच्छे बुरेको पहिचाननेका स्वभाव स्वभावतया ही होता है—किसीका दिया हुआ नहीं।

मनुष्यके आचार-क्षोभोंके विषयमें अनेक मत हैं। आचार-क्षोभोंका स्रोत कुछ भी हो, यह विषय विचारका है। हमारा यहाँ इतना जानना ही पर्याप्त है कि मनुष्यमें अच्छाई और बुराईको पहिचाननेकी शक्ति है। यद्यपि आचारका परिमाण समयानुसार परिवर्तित होता रहता है तथापि परिमाण प्रतिदिन ऊँचा ही होता जाता है। जातियाँ धीरे धीरे उदार भावोंको ग्रहण कर रही हैं। मनुष्यकी दासता दूर हो रही है और धार्मिक जुल्म कम हो रहे हैं।

क्षोभोंका वर्णन खतम करते हुए दो चार शब्द इस संबन्धमें भी लिखना उचित हैं कि स्वास्थ्यपर क्षोभोंका प्रभाव क्या पड़ता है। आनन्दकारी क्षोभोंसे स्वास्थ्य बढ़ता है, मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ पुष्ट होती हैं। शोक शरीरको खा जाता है। साधारण लोग शोकको घुन कीड़ेके समान समझते हैं। जैसे घुन चनेको खा जाता है और थोथा बना देता है वैसे ही

शोक शरीरकी शक्तियोंको नष्ट कर देता है और बिल्कुल बलहीन ढाँचा बना छोड़ता है । क्रोध, रंज, और भयके क्षोभ शरीर पर बुरा प्रभाव डालते हैं और मज्जातन्तुओंको निर्बल कर देते हैं ।

मनुष्य एक विचित्र सरोवर है और क्षोभ उस जलाशयकी अद्भुत लहरें। कोई नहीं जानता कि किस समय कौन लहर उठेगी । कभी कोई लहर उठ जाती है और कभी कोई । इतिहास और महापुरुषोंके जीवनोंका अनुशीलन करके देखो कि मनुष्य कितना अज्ञात प्राणी है। भिन्न भिन्न क्षोभ उठकर मनके समरांगणमें लड़ते हैं। जो विजय प्राप्त करता है उसीके अनुसार कार्य्य होता है। बीच बीचमें बहुधा ऐसी दशायें उपस्थित हो जाती हैं जिनके कारण कार्य्यशैली कुछ औरकी और ही बन जाती है। यदि क्षोभोंकी कार्य्यशैली जानना हो तो अँगरेज महाकवि शेक्सपीयरके नाटकोंका स्वाध्याय करो, बंकिम और टैगोरके उपन्यास पढ़ो—विशेष कर "आँखकी किरकरी"। और माईकेल मधुसूदनदत्तका कृष्णकुमारी नाटक पढ़ो। ऐसे महालेखकों और कवियोंकी रचनाका स्वाध्याय करनेसे ज्ञात होगा कि क्षोभ कितने विचित्र हैं और इनकी कार्य्यशैली कितनी अद्भुत है। शेक्सपीयरके आथेलो, आयेगो, मैकवैथ और हेम्लेटके क्षोभ अवश्य स्वाध्याययोग्य हैं । उन्हें पढ़कर विचार करो कि किस प्रकार आथेलोमें ईर्षा, घृणा और कामनाके भाव उठते हैं, मैकवैथमें मित्रता और कामना लड़ती हैं, और हेम्लेटमें आत्मकरुणा और कर्तव्यता झगड़ते हैं । फिर सोचो कि उनमें किसकी जीत होती है और किसकी हार ।

रोचक प्रश्नावली।

(१) बालकोंमें प्रथम भय उत्पन्न होता है या क्रोध ?

(२) काले भयंकर सर्पको देख कर एक शिशु क्यों नहीं डरता और एक युवा क्यों डर जाता है ?

(३) एक मनुष्यके विचार उसके वाणी और कार्य्योंसे विदित हो जाते हैं। यह कैसे सम्भव है ?

(४) प्राकृतिक दृश्यों और वैज्ञानिक मालीसे काटे छँटे हुए बागोंमें कौन सुंदर है ?

(५) क्या ललित क्षोभ स्वाद, घ्राण और स्पर्श द्वारा भी उठ सकते हैं ?

(६) क्या एक वस्तु सबको सुंदर प्रतीत हो सकती है ?

(७) सुंदरता मनमें होती है या वस्तुमें ?

(८) दूसरों पर हँसना अच्छा है या दूसरोंके संग हँसना ?

(९) फाँसी देनेवाले चांडालको और फाँसीकी आज्ञा देनेवाले न्यायाधीशको तुम पापी समझते हो या धर्मी ?

(१०) तुर्की टोपी लगाना कर्तव्य है या फैल्ट कैप या हैट ? बाल रखाना अच्छा है कटाना ? मूँछ या दाढ़ी रखाना धर्म है या कटाना ? क्यों ?

(११) मनुष्यका स्वभाव जाननेके लिये क्या क्या साधन हैं ?

(१२) एक योगी और एक रंडीकी तुलना करो कि इनसे समाजको क्या क्या लाभ–हानियाँ पहुँचती हैं ?

(१३) इन पंक्तियोंके पाठ पर तुम्हारे मनमें क्या भाव उत्पन्न होते हैं—

पग बिन चले सुने बिन काना,
कर बिन करम करे बिधि नाना।
आननरहित सकलरसभोगी,
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

—तुलसीदास।

तेरहवाँ अध्याय।
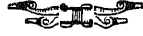
संकल्प।

हम मनके दो महा व्यापार—ज्ञान और विकार—का वर्णन कर चुके हैं। इस अध्यायमें मनके तीसरे महा व्यापार संकल्प (Will) का उल्लेख करते हैं। हम मनुष्यके संवेदन, प्रत्यक्ष, अवधान, स्मृति, कल्पना, विचार, सुख-दुःख और प्रेम, भय आदि शक्तियोंकी व्याख्या कर आये हैं, परन्तु मनुष्यमें जो क्रियाशक्ति है उसकी व्याख्या अभीतक नहीं हुई है। संकल्पका इस क्रियाशक्तिसे संबन्ध है। हमारा संकल्प हमको किसी क्रियाको करने या न करनेको जिस तरह प्रेरित करता है हम उसी तरह निरन्तर ये क्रियायें करते या नहीं करते हैं। ये क्रियायें दो प्रकारकी होती हैं—एक सचेत क्रिया और दूसरी अचेत क्रिया। संकल्पका संबन्ध केवल उन क्रियाओंसे होता है जो सचेत अवस्थामें की जाती हैं—उन क्रियाओंसे नहीं होता जो अचेत अवस्थामें होती हैं। परन्तु सचेत संकल्पात्मक क्रियायें अचेत क्रियाओंसे ही संवर्धित होती हैं। शिशुकी गतियोंको देखो। पहले पहल एक शिशुकी क्रियायें या गतियाँ न प्रेरित होती हैं और न सचेत अनुभवोंके परिणाम होती हैं। संकल्पके संवर्धन पर विचार करनेके वास्ते यह आवश्यक है कि जाँच ऐसी ही अचेत प्रेरणा-हीन क्रियाओंसे प्रारम्भ की जाय।

संकल्पकी व्याख्या प्रारम्भ करनेसे पूर्व यह बता देना भी जरूरी है कि प्रबोधन (Intellectual) क्रिया, विकारक्रिया और संकल्प-क्रियाओंमें क्या क्या भेद हैं। ये भेद नीचेके उदाहरणोंसे भली भाँति समझमें आजायँगे।

एक मनुष्य बैठा हुआ सांख्यके स्वाध्यायमें इतना एकाग्रचित्त हो रहा है कि बाह्य वस्तुओंका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं। सहसा किसीने उसका नाम जोरसे पुकारा और वह चौंक कर उठ खड़ा हुआ। यह

प्रबोधन क्रिया है । इसमें संकल्पका कोई हस्तक्षेप नहीं। एक व्यक्ति निद्रामें पड़ा सो रहा है, किसीकी आहट सुनकर जाग पड़ा। अब वह कान लगा कर यह सुनना चाहता है कि बात क्या है और यह आहट कैसी है। ये क्रियायें संकल्पजन्य हैं। तुमने सुना कि अमरीकामें बड़ा भारी भूचाल आया और लाखों मनुष्योंका जीवन नष्ट हो गया। असंख्य स्त्रीपुरुष बे-घर-बारके हो गये। तुम सुनकर कह देते हो कि "मुझे अत्यन्त शोक है" और मामला खतम हो जाता है। परन्तु यदि तुम्हारा पड़ोसी ऊपरसे गिरकर मर जाय और उसकी विधवा और उसके बालक निस्सहाय निर्धन रह जायँ तो तुम झट उसकी सहायता करने दौड़ पड़ते हो और अपने मित्रोंको भी उस तरफ आकर्षित करनेका प्रयत्न करने लगते हो। इस दूसरी घटनामें सहायताका तत्त्व संकल्प है जो अमरीका निवासियोंके संबन्धमें नहीं था। प्रथम घटनामें केवल विकार थे और दूसरी घटनामें विकारके संग संकल्प भी है।

हम संकल्पका लक्षण इस प्रकार करते हैं कि संकल्प उन क्रियाओंकी शक्तिको कहते हैं जो प्रबोधन और क्षोभ-प्रक्रियाओंकी परिणामस्वरूप है। संसारमें केवल संकल्पसे ही परिणाम निकलते हैं। एक व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान् और विकारवान् हो परन्तु संकल्पके विना वह कुछ नहीं कर सकता। संकल्पकी प्रेरणाशक्तिहीसे कार्य्य होते हैं, अन्यथा उस व्यक्तिके बुद्धि और विकार कंजूसके धनके समान व्यर्थ पड़े रहेंगे। उनसे न उसको कुछ लाभ होगा और न दूसरोंको। इस संकल्प शक्तिका स्वाध्याय करना और देखना कि यह किस प्रकार पुष्ट होती है बड़ा रोचक विषय है। अतः हम क्रियाओंका स्वाध्याय करते हैं। इससे ज्ञात हो जायगा कि संकल्प कैसे संवर्धित होता है।

क्रियायें संकल्पकी प्रकाशिका हैं । संकल्पका अनुशीलन करनेके लिये प्रथम हम उन क्रियाओंको लेते हैं जो सबसे सरल हैं । शिशुकी क्रियायें सबसे सरल होती हैं। शिशु अपने नन्हें नन्हें हाथ पैरोंको इधर उधर मारता है। ऐसा करनेमें न उसका कोई संकल्प होता है और न कोई प्रयोजन। इनको अहेतुक क्रियायें (Random movements) कहते हैं । परन्तु इन अहेतुक क्रियाओंमें भी संकल्पकी कुछ अल्प मात्रा पाई जाती है। बालक हाथ पैर चलाता है । इस गतिसे उसको कुछ आनन्दका अनुभव होता है और वह उसे जारी रखता है । बालकके मज्जातन्तुओं (Nerves) में एक प्रकारकी शक्ति होती है । वही शक्ति हाथ पैर आदि अवयवोंके संचालनमें प्रकाशित होती है। बालकको इन गतियों द्वारा आरम्भसे ही निरन्तर अनुभव होता रहता है और संकल्प-शक्तिका संवर्धन कुछ कुछ प्रारम्भ हो जाता है।

दूसरे प्रकारकी अहेतुक गतियाँ प्रतिफलनक्रिया (Reflex action) होती हैं जिनके दो प्रकार हैं । प्रथम अचेत प्रतिफलनक्रियामें क्रियाका बोध बिल्कुल नहीं होता। दूसरी सचेत प्रतिफलन क्रियामें क्रियाका बोध तो होता है परन्तु अत्यन्त न्यून । एक मेंडक लेकर उसका मस्तिष्क खोपरीमेंसे निकाल दो और फिर उसके पैरपर तेजाब डालो। इसपर उसका पैर गति करेगा जिससे कि तेजाबका दुःख दूर हो जाय ।हम ऐसा अनुभव मनुष्योंपर नहीं कर सकते, किन्तु जब कोई मनुष्य निद्रामें हो उस समय उसके हाथ या पैरमें कुछ चुभो दो । वह झट अंग खींच लेगा और उसको कुछ खबर न होगी । इस प्रकारकी क्रियाओंको अचेत प्रतिफलनक्रिया कहते हैं।

सचेत प्रतिफलन क्रियाका उदाहरण भी समान ही है। भेद केवल इतना ही है कि मनुष्यकी अवस्था जागृत होती है सुषुप्ति नहीं। जब एक मनुष्य गहरे

विचारोंमें मग्न हो उस समय धीरेसे एक पेंसिल उसके पैर पर लगाओ। वह तत्काल पैर खींच लेगा, परन्तु विचारोंमें यथापूर्व मग्न रहेगा। ऐसी दशामें मनुष्य सचेत तो होता है परन्तु यह चेतनताकी मात्रा अत्यन्त न्यून होती है और गति प्रतिफलन ही समझी जाती है। इन दोनों उदाहरणोंमें संकल्पकी प्रेरकशक्ति विद्यमान नहीं होती । ज्ञान तन्तुओंको कुछ उत्तेजना होती है और मन तक बात पहुँचे विना ही ज्ञानतन्तु आवश्यक क्रिया कर देते हैं । जैसे नाजिर मुन्शी न्यायाधीशके सामने सारे झगड़े न लेजाकर बहुतसी छोटी छोटी प्रार्थनाओंपर स्वयं ही नियमानुकूल आज्ञा लिख दिया करते हैं, वैसे ही नाड़ी संस्थान (Nervous system) छोटी छोटी बातोंको मन तक न लेजाकर आवश्यक क्रिया कर देता है। ऐसा करनेसे मनकी शक्ति अनावश्यक क्रियाओंके करनेसे बच जाती है।

अहेतुक प्रतिफलन क्रियाओंसे भिन्न वे क्रियायें हैं जिनको पाशविक (Instictive) क्रियायें कहते हैं। पाशविक क्रियायें जटिल और अनेक प्रकारकी होती हैं। गिरता हुआ हाथ पसारता है। चूहेको देखकर बिल्ली उसके पीछे भागती है। वया पक्षी घोंसला बनाता है। इत्यादि। ये पाशविक क्रियायें अनेक प्रकारकी होती हैं। इनमें दो विशेषतायें पाई जाती हैं। एक स्रोत और दूसरी प्रयोजन। ये क्रियायें किसी एक विशेष प्रयोजन-सिद्धिके लिये होती हैं। इनकी प्रेरणाओंका कुछ न कुछ हेतु होता है।

वया पक्षी घर बनानेके लिये वृक्षकी एक शाखाको चुनता है, घोंसलेके योग्य तन्तु चुनकर लाता है, उनको एक विशेष आकारमें बुनता है और घोंसलेमें आरामका सारा सामान जमा करता है। वर्त्तमान वया पक्षी उतनी ही कुशलतासे घोंसला बनाता है जितनी कुशलतासे

प्राचीन पक्षी बनाते थे । यह क्या बात है ? यह इस पक्षीका पाशविक स्वभाव है । ये सर्व क्रियायें स्वभावकी प्रेरणासे ही हुई हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यह पाशविक स्वभाव क्या है ? इसका उत्तर प्राप्त करनेके लिये जानवरोंके जीवनोंका अनुशीलन करना आवश्यक है। ईश्वरने यह अद्भुत शक्ति जानवरोंको जितनी दी है मनुष्योंको उतनी नहीं दी । परन्तु इससे जानवर मनुष्योंसे श्रेष्ठ नहीं हो जाते । जानवरोंकी यह शक्ति उनके शारीरिक संगठन पर निर्भर है। जैसा जिसका शारीरिक संगठन होता है उसका स्वभाव वैसा ही होता है । अतः पाशविक क्रिया भी प्रतिफलनक्रिया ही है जो आन्तरिक प्रेरणाओंसे होती है; परन्तु यह ऊँची और तीसरी श्रेणीकी प्रतिफलनक्रिया है ।

क्या पक्षी घोंसला बनाता है, किस लिये ? इस लिये कि वह ऐसा किये बिना रह नहीं सकता । उसका शारीरिक संगठन ऐसा बना है कि जब जब प्रेरणा होती है वह उसी विशेष दिशामें क्रिया करता है। उसको किसी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं। उसकी क्रियाके नियम निश्चित हैं। इसी कारण उसको किसी तर्कनाकी भी आवश्यकता नहीं कि क्या करना चाहिये और ऐसा करूँ या वैसा करूँ ।

जानवरोंके संबन्धमें एक प्रश्न यह होता है कि जानवर एक क्रिया करता है और उस क्रियासे उसको कुछ परिणाम प्राप्त होता है। तो क्या दुबारा क्रिया करते समय प्रथम क्रियाके परिणामकी स्मृति जानवरको रहती है या नहीं रहती? क्या जानवर दुबारा क्रिया करते समय यह जानता है कि उसको अमुक परिणाम प्राप्त करना है ? यथा—जाड़ा आनेपर बहुतसे पक्षी गरम देशोंको चले जाते हैं और जब वहाँ जाड़ा प्रारम्भ हो जाता है तो वे फिर वापिस चले आते हैं । अब यह विचारणीय है कि प्रथम वार

जाड़ा पड़नेपर पक्षी गरम प्रदेशमें चला गया । जब दूसरा जाड़ा आया तो क्या उसको प्रथम जाड़ेकी स्मृति होती है कि प्रथम जाड़ेके समय वहाँ गरमी मिली थी, अत: अबकी बार भी वहाँ गरमी प्राप्त करने चलो ? इस प्रश्नका उत्तर 'नहीं' में ही हो सकता है। पक्षीको यह स्मरण नहीं रहता कि वहाँ गरमी मिली थी, अतः अब भी गरमी प्राप्त करने वहाँ चलो। यह तो उसका पाशविक स्वभाव है कि शीतल प्रदेशोंसे उष्ण प्रदेशोंमें चले जाना—वहाँ शीत प्रारम्भ होनेपर फिर यहाँ उड़ आना और यहाँ शीत पड़नेपर फिर वहाँ उड़ जाना। इस क्रियाका प्रयोजन है कि पक्षी शीतसे बचा रहे। परन्तु पक्षीके मनमें इस क्रियाको करनेका कोई प्रयोजन नहीं । जैसे ही आन्तरिक प्रेरणा होती है वह वैसे ही क्रिया करने लग जाता है। मुरगीका स्वभाव अंडे सेना है। वह एक असली अंडेको जिस प्रकार सेती है उसी प्रकार एक कृत्रिम पत्थरके अंडेको भी सेने लगती है। अंडेके सेनेसे मुरगीका यह प्रयोजन नहीं होता कि अंडेसे जैसे बच्चा प्रथम निकला था वैसे अब भी निकलेगा। बच्चा निकले या न निकले, मुरगी अंडा सेवेगी।

जानवरोंकी पाशविक क्रियायें जाननेका केवल एक साधन निरीक्षण है। परन्तु उनके निरीक्षणसे भी स्वयं अपनी पाशविक क्रियाओंका स्वाध्याय करना अधिक लाभकारी है। यदि हम अपनी पाशविक क्रियाओंका निरीक्षण करें और क्रियाओं और मानसिक प्रक्रियाओंका विच्छेद करके अनुशीलन करें तो अधिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

पाशविक क्रियायें मनुष्योंमें भी होती हैं, परन्तु पशुओंसे कम। मनुष्योंकी पाशविक क्रियाका एक उदाहरण यह है कि एक युवती माता चौकमें बैठी हुई है और बालक अन्दर सो रहा है । सहसा बालकके रोनेका शब्द आता है और माता झट उठ कर अन्दर जाती है, परन्तु बालकको सोता

हुआ पाकर वापिस चली आती है। रोनेका शब्द फिर होता है और माता उठकर फिर फौरन बालकके पास जाती है । उस समय माता यह नहीं विचारती कि प्रथम बार भी ऐसा ही शब्द हुआ था और तब बालक सोता हुआ था। अबकी बार भी सोता होगा, इसलिये चलना नहीं चाहिये। माता इस बातको जानती है कि बालकके उठनेपर उसे मेरी सहायताकी जरूरत पड़ेगी और शब्दके साथ ही उठकर बालककी ओर चल पड़ती है। यह माताका पाशविक स्वभाव है। उसका शारीरिक संगठन ही ऐसा है कि जहाँ ऐसी प्रेरणा हुई कि अनुकूल क्रिया उत्पन्न हो गई। न इसमें किसी स्मृतिकी आवश्यकता है और न किसी विचारकी।

अतः पाशविक क्रियाओंका स्रोत शारीरिक संगठन है जिसमें बाह्य या आन्तरिक उत्तेजना होनेसे वह एक विशेष दिशामें क्रिया करने लगता है। इन क्रियाओंके प्रयोजन तात्कालिक और भविष्यत् दोनों हो सकते हैं। कुछ क्रियाओंका प्रयोजन तत्काल सिद्ध हो जाता है और बहुतसी क्रियायें ऐसी होती हैं जिनका प्रयोजन तत्काल सिद्ध नहीं होता । उनका प्रयोजन भविष्यमें सिद्ध होता है और यह भी विदित नहीं होता कि कब और किस प्रकार प्रयोजनसिद्धि होगी।

पाशविक क्रियाओंकी प्रयोजनशीलता यद्यपि मनुष्योंकी संकल्पात्मक क्रियाओंके समीप पहुँचती है, तथापि संकल्पात्मक क्रियाओंकी युक्ति-युक्ततामें और शारीरिक उत्तेजना पर अन्ध प्रतिफलनमें बहुत भेद है। पाशविक उत्तेजनाओंसे होनेवाली क्रियायें अद्भुत हैं । परन्तु ये तब-तक ही अद्भुत प्रतीत होती है जब तक इनमें बुद्धिका भाग नहीं होता।

प्रो० जेम्स (Pro. James) कहते हैं कि मनुष्योंमें ये पाशविक प्रेरणायें बहुत उठती हैं और बन्दरोंसे भी अधिक उठती हैं। यदि प्रो०

जेम्सका कथन सत्य है तो क्या कारण है कि मनुष्य-जीवनमें पाशविक उत्तेजनायें उतना भाग नहीं लेतीं जितना जानवरोंमें। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम, यह कोई आवश्यक नहीं कि जो पाशविक उत्तेजना उठे वह स्थायी रहे। उत्तेजनाके पुष्ट होनेके समय यदि उसके कार्य्यको रोक दिया जाय तो उत्तेजना दब जाती है या नष्ट हो जाती है और उन अभ्यासों द्वारा जो पूर्व उत्तेजनाओंसे बन गये हैं नवीन प्रेरणा नष्ट की जा सकती है। जब एक बार एक क्रिया करनेका अभ्यास पड़ जाता है तो फिर उसको दूर करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। मनुष्य अपनी तमाम मानसिक शक्तियों सहित भी यदि एक अभ्यासको दूर करनेमें कठिनता अनुभव करता है तो बेचारे जानवरोंकी क्या कथा जिनको ये मानसिक शक्तियाँ प्राप्त ही नहीं हैं। जानवरोंके लिये यह कार्य्य नितान्त असम्भव है। यही कारण है कि जानवरोंमें जो उत्तेजना उठती है वह स्थिर हो जाती है, पर मनुष्योंमें नहीं होती।

इन सिद्धान्तोंकी सत्यता स्थिर करनेके लिये विद्वानोंने असंख्य परीक्षायें की हैं। स्वयं भी परीक्षा करके देखो कि जो उत्तेजनायें एक जानवरमें उत्पन्न होती हैं क्या वे दूसरे जानवरोंमें पुष्ट हो सकती हैं और क्या एक जानवरकी उत्तेजनायें नष्ट की जा सकती हैं। उदाहरणके लिये पीछे चलनेकी उत्तेजनाको लो। कुत्ते मनुष्योंके पीछे पीछे चलने लगते हैं। क्या बिल्लीका बच्चा भी कुत्तेके समान मनुष्यके पीछे चल सकता है? मुरगीका बच्चा जैसे मुरगीके पीछे पीछे फिरता है क्या वैसे ही तुम्हारे संग भी फिर सकता है? क्या कुत्तेमेंसे मनुष्यके संग चलनेकी उत्तेजना नष्ट हो सकती है? यदि हो सकती है तो बालकोंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये? मनुष्य-बालकमें किस समय कौन उत्तेजना उठती है, इसका निरीक्षण करो।

वे सारी क्रियायें या गतियाँ जिनका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं संकल्पके प्रयोगका पथ पक्का करती हैं। सचेष्ट चित्त इन सब सहज गतियोंका निरीक्षण करता है और धीरे धीरे वह स्वयं भी इनमें सम्मिलित होने लगता है।

मन सामग्रीकी प्राप्तिके लिये निरन्तर तैयार रहता है और इन क्रियाओंमें उसको सामान मिल जाता है। मन इन गतियोंका ही निरिक्षण नहीं करता किन्तु इनका जो प्रभाव शारीरिक संस्थानपर और स्वयम् मनपर पड़ता है उसका भी अनुभव करता है। कुछ क्रियाओंसे सुख मिलता है और पुनर्प्रत्यक्षकी शक्ति उनकी प्रतिमा मन पर बार बार उपस्थित करती है, यहाँ तक कि मनमें एक इच्छा या कामना बन जाती है। इष्टसिद्धिके वास्ते कामना कार्य्यकारी आवश्यक उत्तेजनाओंको प्रोत्साहित करती है और इसका परिणाम संकल्पात्मक क्रिया निकलता है। अब केवल उत्तम प्रकारके इस संकल्प (Volition) का वर्णन शेष रह गया है जिसमें दो नवीन तत्त्व कामना और संकल्पात्मक क्रियायें हैं।

कामना (Desire) सर्वदा किसी वस्तुकी होती है। एक व्यक्ति मिठाईकी कामना कर सकता है, क्यों कि उसको मिठाईसे सुखप्राप्तिकी आशा है। दूसरा व्यक्ति दुःखसे मुक्त होनेकी कामना कर सकता है। तीसरा मनुष्य हाथी, घोड़े, सजे हुए महल, सुंदर स्त्री आदिकी इच्छा कर सकता है। इन सारी दशाओंमें किसी वस्तुकी इच्छा और उससे सुख पानेकी आशा ये दो अवश्य होती हैं। कामनाके संग इष्टसिद्धिका विचार सर्वदा लगा रहता है कि अमुक वस्तु प्राप्त करनी है या अमुक दुःख दूर करना है। परन्तु प्रतिफलन और पाशविक क्रियाओंमें यह इष्टसिद्धिका विचार नहीं होता। जो क्रिया की जाती है वह नितान्त अन्ध होती है और उत्तेजना उपस्थित होनेपर शारीरिक संगठनके अनुकूल अवश्य करनी पड़ती है।

कामनाका अवधानसे गहरा संबन्ध है और कुछ विद्वान् तो कामनाको अवधानका एक प्रकार समझते हैं । यदि मेरे पास कुछ रुपया आजाय तो मैं उसको कैसे व्यय करूँ और उससे क्या खरीद करूँ, इत्यादि बातें अवधान पर बहुत कुछ निर्भर हैं । यदि मेरी प्रकृति स्वाध्याय करनेकी अधिक है तो मैं नवीन पुस्तक मँगानेका विचार करूँगा । यदि मेरी प्रकृति ललित कलाओंकी ओर झुकी होगी तो मैं सुंदर सुन्दर चित्र, मूर्तियाँ आदि मंगाऊँगा और यदि मेरी प्रकृति कुछ अन्य ही प्रकारकी है तो मैं वैसा ही करनेका विचार करूँगा । कौन कामना विजयी होगी, इसपर अवधानका शासन होता है । जिस विषयपर मैं स्व-अवधानको केंद्रित करूँगा संकल्प कामनाके उसी विशेष पदार्थको आगे कर देगी । जब वह विशेष पदार्थ आगे हो जायगा तो यह अपनी कामनाको बलवती बनाना प्रारम्भ करेगा, यहाँ तक कि अन्य पदार्थोंकी कामनायें उस कामनाकी अपेक्षा भूलमें पड़ जायँगी ।

यहाँ इस बातकी जाँच करना ठीक है कि यदि कामनायें कई वस्तुओंकी एक संग हों तो क्या हम पहलेसे ही यह निश्चय कर सकते हैं कि किस वस्तुका प्रभाव सम्भवतः अधिक रहेगा । यह हम निश्चयपूर्वक बता सकते हैं कि सुखकी आशा जितनी होगी कामना उसीके अनुकूल बलवती होगी । यदि एक वस्तुसे अधिक सुख प्राप्तिकी आशा है तो उस वस्तुकी कामना अधिक होगी और यदि किसी वस्तुसे सुखकी आशा न्यून है तो उसकी कामना भी न्यून होगी । अर्थात् यहाँ निश्चय करनेका कार्य्य पुनर्प्रत्यक्षकी शक्ति करती है । यह शक्ति वस्तुसंबन्धी सुखकी प्रतिमा उपस्थित करती है और कामनाको बलवती या बलहीन बनाती है ।

परन्तु यह खयाल कभी नहीं करना चाहिये कि हम सर्वदा सुखकी आशाके अनुसार ही कार्य्य करते हैं । हम बहुधा इस आशाके विपरीत करते हैं । पड़ोसियोंको संकटमें पड़ा देखकर लोग अपने सुखका ध्यान छोड़ देते हैं और अपनी सुखसामग्रीमें कमी करके पड़ोसीकी सहायता करते हैं। यहाँ परसेवाके विकारोंकी शान्तिसे ही आनन्द मिल जाता है। यह सामान्य कथन तो ठीक है कि हमारी कामनाओंके बलानुकूल हमारी क्रिया निश्चय होती है परन्तु यह बता सकनेसे पूर्व कि कामनाका कौन विषय कार्य्यमें परिणत होगा कामना करनेवाले व्यक्तिकी पूर्ववर्ती दशा, वर्त्तमान स्थिति (Environment) और उसके अभ्यास जानने आवश्यक हैं। भूतकालमें जो जैसा जीवन व्यतीत करता है वह वैसा ही अभ्यासी हो जाता है और उसीके अनुसार कामनायें उत्पन्न होती हैं। दूसरे, वर्त्तमान स्थिति जिसमें एक व्यक्ति रहता है बहुत प्रभाववाली होती है और इसके परिणाम स्वरूप जो अभ्यास पड़ जाते हैं उनके प्रभावका तो क्या कहना । विद्यार्थी स्वयं स्व-कामनाओंकी जाँच करके देखें कि अमुक कामना क्यों है। विद्यार्थीकी पूर्वदशा और वर्तमान स्थितिका क्या और कितना प्रभाव उसकी कामना पर पड़ा है। विद्यार्थी लिखे कि यदि उसको एक सहस्र रुपया मिल जायँ तो वह क्या करे और एक लक्ष मिल जायँ तो क्या ? और क्यों ऐसा करे जैसा कि वह करना चाहता है ?

पुनर्प्रत्यक्ष कामनाका पूर्ववर्ती है। एक व्यक्ति बागमें जाता है और पके अनारोंको देखता है। उसको एक अनार खानेकी इच्छा होती है। यह इच्छा क्यों उठी ? इसका समाधान यह है कि दृष्टि द्वारा उसे अनारका संवेदन हुआ। उस संवेदनने मनमें प्रतिमाओंकी एक शृंखला उत्पन्न कर दी। मन-में ही उसने अनारको खाया और अपनी क्षुधाको शान्त किया। इन प्रतिमाओंका प्रभाव मनपर इतना प्रबल पड़ता है कि कामना उत्पन्न

हो जाती है। इस कामनामें दो तत्त्व सम्मिलित हैं—(१) सुखदायक विका-रोंकी आशा कि अनार खानेसे सुख मिलेगा। और (२) इन विकारोंको शान्त करनेकी सचेत प्रवृत्ति जिसका परिणाम सरलतया क्रिया होता है। इस प्रकार विचार एक सचेष्ट शक्ति बन जाते हैं और कार्य्यकारी तन्तुओंको सूचना भेज देते हैं जो क्रिया करने लग जाते हैं।

परन्तु बहुतसी क्रियायें अनुकरण (Imitation) मात्रसे बिना विचारे हो जाती हैं और बहुतसे विचार क्रियाहीन रह जाते हैं । इनका क्या कारण है? यथा—एक व्यक्ति चाकूसे कुछ छील रहा है, दूसरा मनुष्य अनुकरण मात्रसे बिना किसी विचारके चाकू ले लेता है और वैसे ही छीलने लग जाता है। बहुधा कार्य्यकारी विचार तो मनमें उठते हैं किन्तु क्रिया नहीं होती। इन दोनों शंकाओंका समाधान यह है कि कार्य्यकारी विचार सर्वदा क्रियामें परिणत होना चाहता है, परन्तु किसी कारणसे उसका प्रवाह रुक जाता है और क्रिया नहीं होती। प्रथम उदाहरणमें दूसरेको कुछ करते देखकर कार्य्यकारी विचार उत्पन्न हो गया । उसकी क्रियाको कोई रोकनेवाला न होनेके कारण क्रिया हो गई । दूसरे उदा-हरणमें जब कोई बाधक उपस्थित हो जाता है तो कार्य्यकारी विचार विचारमें रह जाता है और क्रियामें परिणत नहीं होने पाता।

अनुकरणकी शक्ति मनुष्य-जीवनमें एक बड़ा भाग लेती है किन्तु हम उसपर ध्यान नहीं देते । हम बहुधा दूसरोंके कार्य्योंका अनुकरण करते रहते हैं परन्तु उन्हीं कार्य्योंका अनुकरण करते हैं जो हमको रोचक प्रतीत होते हैं । मनुष्य जैसी संगतिमें बैठता है वैसा ही बन जाता है। संगी साथियोंकी क्रियायें मनपर प्रत्येक समय संस्कार डालती रहती हैं। मनुष्यका चित्त सर्वदा सावधान नहीं रह सकता कि यह प्रभाव ग्रहण

करना चाहिये और यह नहीं । बस, संगतिका असर जम जाता है और मनुष्य वैसा ही करने लग जाता है। अनुकरण-क्रिया संकल्पात्मक-क्रियाके उच्च तलतक नहीं पहुँचती । बड़े बड़े बन्दर आदि जानवरों, बालकों और निर्बल मस्तिष्कवाले मनुष्योंमें अनुकरण क्रियाओंके बहुत उदाहरण मिल सकते हैं। एक मित्र एक बन्दरके विषयमें सुनाते थे कि एक बन्दर एक जैंटिल मैनकी क्रियाओंका अनुकरण किया करता था। जबतक वह व्यक्ति क्रिया करता रहता बन्दर दूर बैठा बैठा देखता रहता, जब वह चला जाता तो बन्दर उसकी जगहपर आकर वैसा ही करने लगता। जिस प्रकार वह पुरुष बाल वहाया करता वह बन्दर भी शीशा कंघा लेकर बाल वहाया करता। एक दिन उस मनुष्यने एक उस्तरा लेकर उसे अपने नाक पर उल्टा करके खूब ही रगड़ा और बन्दर यह कृत्य बैठा बैठा देखता रहा। यथापूर्व जिस समय बाबूजी वहाँसे उठकर चले गये तो बन्दर आया और उस्तरा खोलकर उसने अपना नाक काट लिया और चिल्लाता हुआ भाग गया ! इसके बाद वह फिर कभी नहीं आया। बालकोंके अनुकरण तो प्रसिद्ध ही हैं। बालक अपने माता, पिता और गुरुओंका अनुकरण सर्वदा किया करते हैं और और उनके ही समान बननेका प्रयत्न किया करते हैं। हब्शियों और सभ्य समाजके बालकोंमें भेद इतना ही होता है कि सभ्य संतानको अनुकरण करनेके लिये पर्याप्त मिल जाता है जो हब्शियोंकी संतानको नसीब नहीं होता। सभ्य समाजके बालकोंको अनुकरण द्वारा अनायास ही वे लाभकारी आचार विचार और रीति-रिवाज मिल जाते हैं जो स्वानुभवसे सहस्रों वर्ष पर्यन्त भी प्राप्त नहीं हो सकते ।

कामना एक निश्चित अन्त (End) के लिये होती है परन्तु अनेक कामनायें साधारणतया उत्पन्न हो जाती हैं और उनमें कोई स्थिरता नहीं होती। जैसे ही मनुष्यकी संकल्पशक्ति पुष्ट होती जाती है वह ऐसी

कामनाओंको दूर करता जाता है और कामनाके उच्चतम प्रकार प्रयोजन (Motive) को पुष्टि देता जाता है । प्रयोजन क्या है ? प्रयोजन प्राप्त होने योग्य वस्तुके लिये एक शिक्षित कामना है । संकल्पका प्रभाव प्रयोजन पर भी बहुत पड़ता है । संकल्प अवधानको प्राप्य वस्तुओंमेंसे किसी एक पर केंद्रित कर सकता है और उस वस्तुको विशेष कामनाका विषय बना सकता है । अत: जहाँ प्रयोजन क्रियात्मक संकल्पका एक आवश्यक तत्त्व बनता है, अर्थात् जहाँ संकल्पको कार्य्यकारी बनानेमें प्रयोजन एक आवश्यक तत्त्व है वहाँ संकल्प भी पुष्ट होकर प्रयोजन पर शासन करता है । अर्थात् संकल्प अवधान द्वारा एक वस्तुकी कामनाको प्रयोजन बना सकता है ।

इस बातका निर्णय करनेमें कि कामनाका कौन विषय प्रयोजन बनकर कार्य्यमें परिणत होगा बुद्धिके हस्तक्षेपकी आवश्यकता है । जहाँ एकसे अधिक विषय हों वहाँ उनपर विचार होने लगता है कि यह करना चाहिये अथवा वह करना चाहिये और इच्छित बात क्या करनेसे प्राप्त होगी। ऐसी दशामें सब विषयोंकी परस्पर तुलना आरम्भ होती है । उनके अलग अलग गुण और दोष विचारे जाते हैं। अपने साधन देखे जाते हैं कि कौन बात सरलतापूर्वक हो सकती है। क्या करने पर व्यय अधिक और क्या करनेपर व्यय न्यून होगा । इस प्रकार विवेचन (Deliberation) होता रहेगा जब तक कि कोई एक बात चुन न ली जाय । जब एक बात चुन ली, यह निर्णय हो गया कि यह करना है और वह नहीं, तो विवेचनका अन्त हो जाता है। निर्णय करने या चुननेकी क्रियासे यह नितान्त स्पष्ट है कि ये कमसे कम दो पर्यायें अवश्य हैं और दोनों परस्पर भिन्न भिन्न हैं। प्रत्येक संकल्पात्मक क्रियामें निर्णयकी आवश्यकता निरन्तर रहती है । कभी कभी बिना बिचारे भी हम एक बातका निर्णय कर लेते हैं। जब कार्य्य

बिगड़ जाता है तो फिर पश्चात्ताप करते हैं कि हमने यह क्यों किया। ऐसे विचारहीन निर्णयोंसे असंख्य युवा नष्ट भ्रष्ट हो गये हैं। दूसरी तरफ हम एक बातपर विचार ही विचार किये जाते हैं और कार्य्यका योग्य समय खो बैठते हैं। विचारहीनता और अतिविचारशीलता दोनों निर्णीत-कार्य्य सम्पादनके लिये हानिकर हैं।

हम सर्वदा चुनाव करते रहते हैं। हम जब सैर करने जाते हैं तब हमें असंख्य वस्तुयें रास्तेमें मिलती हैं। हम उनमेंसे चुनाव करते हैं कि हमको वृक्ष देखने चाहियें या पक्षी, खेत देखने चाहियें या नदी, तालाव और कूप। या हमें बिना किसी विशेष निश्चयके सबको साधारण दृष्टिसे देखते हुए चलना चाहिये। हम अपने जीवनमें ऐसे चुनाव सर्वदा करते रहते हैं और अपने चुनावोंके अनुकूल अपनी एक छोटीसी दुनिया बना लेते हैं।

हमारे निर्णयमें एक और तत्त्व होता है जिसको संकल्पकी पूर्ण स्वाधीनता (Perfect freedom of the will) कहते हैं। जब हम किसी बातका चुनाव करने लगते हैं तो हमको भिन्न भिन्न वस्तुयें आकर्षित करती हैं। यहाँ हमारा यह अधिकार होता है कि हम किसको चुनें और किसको न चुनें। हमें निर्णय करनेमें पूर्ण स्वाधीनता है। हम सैर करते हुए वृक्षोंको देख रहे हैं किन्तु यदि हम चाहें तो वृक्षोंको न देखकर खेतको या तालावको या पहाड़को देख सकते हैं। संकल्पकी स्वाधीनता और पराधीनताका निर्णय करना दर्शनशास्त्रका विषय है। इस प्रकारके महा जटिल विषयका विवेचन करनेके लिये यह स्थान नहीं। हमारे लिये यहाँ यह जानना पर्याप्त है कि जीवनकी प्रत्येक क्रियामें यदि हम चाहते तो और कुछ कर सकते थे। इतिहास और साहित्यके पोथेके पोथे निर्णयोंके उदाहरणोंसे भरे पड़े हैं। हम इन निर्णयोंके अनुसार मनुष्योंके स्वभाव,

आचार-विचार और योग्यताका अनुमान लगाते हैं। क्योंकि किसी बातका निर्णय ही संकल्पात्मक क्रिया उत्पन्न करता है जिसको हम मनुष्यका आचार (Conduct) कहते हैं ।

आचार संकल्पका अन्तिम दरजा है । यह कार्य्यकारी तत्त्व है । इसको कभी कभी कार्य्यकारी संकल्प भी कहते हैं । आचार सर्व ज्ञानतत्त्वों और विकारोंका परिणाम होता है । संवेदन, प्रत्यक्ष, कल्पना, विचार, सुख-दुःख, प्रेम, भय, क्रोध आदि सारी शक्तियाँ मिलकर आचारको परिवर्तित, संचालित और प्रोत्साहित या निरुत्साहित करती रहती हैं ।

खाली निश्चयसे कोई लाभ नहीं । यदि किसी बातके करनेका निश्चय कर लिया जाय किन्तु उसको कार्य्यमें परिणत न किया जाय तो वह निश्चय नितान्त व्यर्थ है । आज भारतको ऐसे लोगोंकी आवश्यकता है जो कुछ करके दिखावें। बहुतसे सज्जन बातें खूब बनाते हैं, गहरा अनुभव करते हैं और अपने निश्चयोंको प्रकाश भी कर देते हैं कि वे यह करेंगे, वह करेंगे, अमुक बात आरम्भ करेंगे; परन्तु करते कुछ नहीं । ऐसे बहुतसे कर्महीन मनुष्योंसे वह एक व्यक्ति उत्तम है जो करके दिखा देता है कि वह क्या करना चाहता था । अधिकांश विद्यार्थी प्रतिदिन निश्चय किया करते हैं कि हम 'समय-विभाग' बनावेंगे और आगेसे समयानुकूल कार्य्य किया करेंगे । परन्तु जब कार्य्य करनेका समय आता है तो मित्रोंके संग थोथी बातोंमें लग जाते हैं और सारा अमूल्य समय व्यर्थ गवाँ देते हैं । अँगरेजीमें एक कहावत है कि—Hell is paved with good intentions—नरककी सड़क अच्छे निश्चयोंसे बनी है । अर्थात् लोग निश्चय तो बड़े अच्छे अच्छे करते हैं, किन्तु उनको कार्य्यमें परिणत नहीं करते और इसीलिये दुःख उठाते हैं ।

मनुष्य–जीवनमें आचार अत्यन्त आवश्यक है। इस लिये प्रत्येक व्यक्तिको यह प्रयत्न करना चाहिये कि आचार ठीक दिशामें पुष्ट हो। इसपर प्रभाव करनेवाले कई तत्त्व हैं जिनमेंसे पहला तत्त्व बुद्धिका है। पुनर्प्रत्यक्षकी शक्ति हमारे सम्मुख वे सब आनन्द और लाभ रख देती है जो वर्त्तमान परिश्रमी प्रक्रियाओंसे होंगे। जीवनके आरम्भमें इस प्रकारकी प्रतिमायें बहुत कम होती हैं और जो होती हैं वे निर्बल होती हैं। अतः बाल्यावस्थामें एक ऐसे बुद्धिमान् गम्भीर अध्यापककी आवश्यकता है जो बालकोंको सीधे पथपर चलावे और स्वानुभव द्वारा उनकी शक्तियोंको एक ऐसी दिशामें लगा दे जिससे वे भविष्यमें सुखी हों। जैसे जैसे बालक बड़ा होता जाता है उसके अनुभवोंका कोष भरता जाता है। उसकी प्रतिमायें संख्यामें अधिक और स्पष्ट होती जाती हैं यहाँ तक कि उसे बाह्य सहायताकी कोई अवश्यकता नहीं रहती। इन ही प्रतिमाओंसे सारे प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं। अब वह मनुष्य स्वावलम्बी होकर भविष्यमें स्वनिश्चित आदर्शकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर सकता है।

आचार पर शासन करनेवालोंमें दूसरा नम्बर क्षोभोंका है। भविष्य सुखकी प्रतिमायें अधिक आधिक आकर्षक बनती जाती हैं। बाल्यावस्थामें एक बालक वर्त्तमान सुखका ही ध्यान करता है और भविष्य सुखको कुछ नहीं समझता। बाल्यावस्थामें मन निर्बल होता है। उसमें किसी विषयपर केंद्रित होनेकी शक्ति नहीं होती। वह स्वयं स्वसंकल्पको प्रेरित नहीं कर सकता। यद्यपि एक बालक कुछ बड़ा होनेपर कुछ बनना चाहता है, किन्तु न उसमें आवश्यक निश्चय होता है और न संकल्पकी दृढता। इसी लिये वह अपने आदर्शतक सरलतापूर्वक नहीं पहुँच सकता। ऐसी अवस्थामें भी एक जानकार अध्यापककी आवश्यकता है जो बालकको सत्य पथपर चलावे।

इस सम्बन्धमें तीसरा नम्बर प्रतिषेधक शक्ति (Inhibitory power) का है। इसी शक्तिके कारण हम सत्य पथपर रहते हैं। यह छोटी छोटी हानिकर कामनाओंको जो हमको मुख्य इच्छासे दूर खींचती हैं नष्ट कर देती है और हमको मुख्य बातपर स्थिर रखती है। यदि हमारेमें यह प्रतिषेधक शक्ति न हो तो हमारा प्रत्येक कार्य्यकारी विचार अपनी साधारण क्रियामें परिणत हो जाय। यह शक्ति विचारोंको शासनमें रखती है और उनकी क्रियाओंके प्रवाहोंको अपने लाभके लिये बदल देती है। इस शक्तिके कारण प्रत्येक विचार लाभकारी या हानिकर कार्य्यमें परिणत नहीं होता। निश्चित विचार ही कार्य्यमें परिणत होते हैं और वे भी एक निश्चित प्रयोजनके वास्ते। यह प्रतिषेधक शक्ति स्वयं एक मिश्रित शक्ति है। इसमें स्मृति, विवेचन और चुनावके तत्त्व सम्मिलित हैं। अन्य शक्तियोंकी अपेक्षा यह देरमें पुष्टि पाती है। बालकोंमें यह शक्ति नहीं पाई जाती और बहुतसे मनुष्योंमें भी यह बहुत निर्बल और अनिश्चित अवस्थामें होती है।

संकल्पकी व्याख्याका अन्त करनेसे पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि आत्मशासनपर भी कुछ लिखा जाय। शिक्षाका प्रयोजन आत्मशासन ही है जो शिक्षित संकल्पका दूसरा नाम है। हम इस गलतीमें बहुधा पड़ जाते हैं कि हमारी मानसिक शक्तियाँ सब भिन्न भिन्न हैं और ये सब अलग अलग ही पुष्ट होती हैं। यह हमारी एक भूल है। मन एक है और उसका संवर्धन समग्ररूपसे होता है। मनके लिये सामग्री इकट्ठा करनेके वास्ते जैसे ही हम निरीक्षणकी शक्तिको बढ़ाते हैं वैसे ही संग ही संग प्रतिमा बनाने और बढ़ानेकी तथा विचार करने, विकारोंका अनुभव करने और संकल्प करनेकी शक्तियाँ भी बढ़ती जाती हैं। मानसिक शक्तियाँ सब एक दूसरे पर आश्रित हैं और सबका संवर्धन और विकाश संग संग होता है।

संकल्प शक्ति बाल्यावस्थासे पुष्ट होने लगती है। बालक पहले पहल अपनी मांसपेशियोंपर शासन प्राप्त करनेका यत्न करने लगता है। वह महा कठिनतापूर्वक वस्तुओंको पकड़ना, खड़ा होना, और चलना फिरना सीखता है। परन्तु जानवरोंके बच्चे यह शक्ति बहुत शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। हमने देखा है कि गायका बच्चा पैदा होनेके दो या तीन घंटोंके पश्चात् ही चलने लग जाता है। विद्यार्थियोंको यह भली भाँति स्मरण होगा कि लिखना, पढ़ना, तैरना और अन्य कार्य्य सीखनेमें उनको कितनी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। मनुष्य-संतानको कला कौशल सीखनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है।

फिर बालक स्व-विचारोंको शासित करना सीखता है। यह प्रथम बातकी अपेक्षा कठिन कार्य्य है, क्यों कि इसमें मानसिक कठिनता भी सम्मिलित हो जाती है। बालक अन्य बालकोंके संग खेलने जाता है। यदि खेल उसके विपरीत पड़ जाता है और वह यदि अपने भावोंको प्रकाश करता है तो बालक उस पर हँसते हैं, उसको पीटने लगते हैं और उसको फिर खेलमें सम्मिलित नहीं करते। यह एक कठिन शिक्षा है और उस बालकको अपने भावोंका प्रकाशन रोकना पड़ता है। प्रथम वह भावोंके प्रकाशनको रोकना सीख जाता है और फिर भावोंको भी रोकना सीख जाता है। जिस प्रकार वह बालक जीत—हार पर पहले आनन्द और शोक मनाता था अब नहीं मनाता। परन्तु कभी कभी भाव इतने प्रबल हो उठते हैं कि शासनसे बाहर हो जाते हैं। किन्तु भावोंकी प्रबलता प्रतिदिन कम होती जाती है यहाँ तक कि विकार बिल्कुल शान्त हो जाते हैं।

अब विचारोंका शासन जो सबसे कठिन कार्य्य है होने लगता है। यह शासन अवधान द्वारा प्राप्त होता है। पहले पहल अवधान प्रयत्न-हीन होता है। जैसा उत्तेजक मिलता है अवधान उसीके अनुकूल हो लेता

है—कभी इस ओर खिंच जाता है तो कभी उस तरफ चला जाता है। धीरे धीरे संकल्प एक विचारको ध्यानमें स्थिर करने लगता है और अन्य विचारोंको पीछे फेंक देता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या हम उन विचारोंके भी उत्तरदाता हैं जो हमारे मनमें स्वतः आ जाते हैं। जैसे हम पक्षियोंको अपने ऊपर आकाशमें उड़नेसे रोक नहीं सकते, किन्तु सिरपर घोंसला बनानेसे रोक सकते हैं, उसी प्रकार हम विचारोंको मनमें आनेसे रोक नहीं सकते, परन्तु हम उन विचारोंको मनमें घर बनानेसे रोक सकते हैं। यदि हम किसी विचारको अपने मनमें रक्खें तो वह हमारे मनका एक भाग बन जाता है। इन विचारोंको रोकना या दूर करना विचारों पर शासन करनेकी हमारी योग्यता पर निर्भर है। अतः मनमें किसी विचारके स्वतः आनेके हम उत्तरदाता नहीं किन्तु उसको मनमें रखने और मनका एक भाग बनानेके उत्तरदाता अवश्य हैं।

हम कुछ सीमातक अपने विश्वासोंको भी शासित कर सकते हैं। यह कहा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति एक असत्यको वर्षभर निरन्तर दुहराता रहे तो वह वर्षके अन्तमें उस असत्यको सत्य समझने लग जायगा। मनुष्य असत्य विचारको मनमें रोक रखता है, उसको अपने मनका एक भाग बनने देता है, उसको सत्य बातोंमें गिनने लगता है और उसपर विश्वास जमा लेता है।

संकल्पकी उच्च कोटिकी क्रियाओंका प्रवाह अधम कोटिकी क्रियाओंकी ओर निरन्तर रहता है। जो क्रिया बहुधा दुहराई जाती है वह शीघ्र ही संकल्पतत्त्व खोने लगती है, और अभ्यासी बनने लगती है, अर्थात् उस क्रियाके करनेका अभ्यास हो जाता है और संकल्पकी आवश्यकता कम हो जाती है। उस क्रियाके करनेमें जितने मानसिक प्रयत्नकी पहले आवश्यकता

पड़ती थी अब उतनी नहीं पड़ती । अतः आत्मशासनके लिये उत्तम अभ्यास डालने चाहियें । अभ्यासोंका प्रभाव बहुत प्रबल होता है ।

अभ्यासोंकी जमाका नाम स्वभाव (Character) है । अभ्यासमें तीन शासक नियम होते हैं । हम अपने पूर्वजोंसे अभ्यास प्राप्त नहीं करते, किन्तु विशेष प्रकारके अभ्यासोंको प्राप्त करनेकी प्रवृति हासिल करते हैं । इस बीजपरम्पराकी प्रवृत्तिके अनुकूल हम अपने अभ्यास बनाते हैं । परन्तु यदि हम अन्य दो नियमों पर भली भाँति ध्यान दें तो हम एक अभ्यासको बननेसे रोक सकते हैं । यदि तुम्हारा स्वभाव बुरा है तो यह तुम्हारा अपना दोष है, तुम्हारे पूर्वजोंका नहीं । चाहे तुम्हारे पूर्वजोंका स्वभाव कैसा ही खराब था यदि तुम चाहते तो अपना स्वभाव अच्छा बना सकते थे और बुराईको दूर कर सकते थे ।

दूसरा नियम स्थिति (Environment) का है । स्थितिका अभ्यासोंपर बड़ा असर पड़ता है । बहुधा अभ्यास स्थितिके अनुकूल ही बनते हैं । जो बालक बुराईमें पलते हैं उनके अभ्यास बुरे पड़ते हैं और जो बालक अच्छे धार्मिक घरोंमें पलते हैं उनके अभ्यास अच्छे बनते हैं । रंडीके घरमें रहनेवाली एक बालिकाके अभ्यास रंडियोंके समान बनेंगे और एक विद्वान् धार्मिक सज्जनकी पुत्रीके अभ्यास उत्तम बनेंगे । भेड़ियोंकी माँदोंमें रहकर मनुष्य-बालकोंके अभ्यास भेड़ियों जैसे हो जाते हैं । सिरसागंज जिला मैनपुरीमें एक ऐसा ही व्यक्ति था । वह बिल्कुल जानवर प्रतीत होता था । उसका नाम लोगोंने 'बादशाह' रख दिया था । वह बोलना नहीं जानता था। वह जिस समय भेड़ियेकी माँदसे लाया गया था कच्चा मांस खाता था और चारों हाथ—पैरोंके बल चला करता था । स्थितिका बड़ा असर होता है। इसीलिये विद्वान् महात्मागण सत्संगकी महिमा गाया करते हैं । यथा—

हो सुसंगसे सुख घना दुख कुसंगसे जान ।
गंधी और लुहारकी देखो बैठ दुकान ॥

तीसरा नियम संकल्प है। यह नियम महा बलवान् है। इसके आगे बीजपरस्परा और स्थिति कोई वस्तु नहीं। एक मनुष्य जिस बातका दृढ़ संकल्प करता है वह उसको अवश्य प्राप्त होती है। नेपोलियन बोनापार्टकी बाबत कहा जाता है कि यह वीर किसी बातको भी असम्भव नहीं समझता था। उसका कथन है कि संकल्पसे सब सम्भव हो जाता है। इस कथनमें बहुत कुछ सत्यता प्रतीत होती है। इतिहासके स्वाध्यायसे विदित होता है कि दृढ संकल्पवालोंने क्या नहीं कर दिखाया। अग्नि, जल, वायु आदि सबपर अधिकार जमा लिया।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हम अभ्यासको शासित करनेवाले इन नियमोंको कहाँतक वशमें रख सकते हैं। हम अपने पूर्वजोंको नहीं चुन सकते। यह हमारी शक्तिके सर्वथा बाहर है, किन्तु हम अपनी स्थितिका परिवर्तन कर सकते हैं और ऐसा सर्वदा होता आया है।

हम अपने संकल्पको भी वशमें कर सकते हैं और यह विवेचन और चुनाव द्वारा हो सकता है। ऊँचे दरजेका सुख केवल शक्तिके ज्ञानसे मिलता है। हमारी आत्मा हमारे वशमें है और हम चुनाव कर सकते हैं। सुख और भी अधिक हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि हम एक बड़ी संख्यामेंसे चुनाव कर रहे हैं। पर्याय विषय संख्यामें जितने अधिक होते हैं चुनावसे उतना ही सुख अधिक मिलता है।

पर्याय विषयोंकी संख्या शिक्षासे बढ़ जाती है। जो शिक्षित होते हैं उनको बहुधा कठिनाई पड़ जाती है कि क्या बात करें—जीवनको किस

ओर लगावें। किन्तु अशिक्षित लोग ऐसा नहीं कर सकते। उनके सम्मुख जो बात आजाती है उसे ही बेकर डालते हैं। हम बातें जितनी आधिक कर सकते हैं और भले प्रकार कर सकते हैं, हमारा जीवन उतना ही सुखदायक और शान्त बन जाता है।

भले अभ्यास डालनेके दो साधन हैं। प्रथम संकल्प शक्तिका प्रयोग करो ओर जो अभ्यास बनाना चाहते हो उसके विचारको मनमें सबसे ऊँचा स्थान देकर उसको निरन्तर अपने सामने रक्खो। उन सारी बातोंको जो अभ्यास बनानेमें बाधक हों दूर रक्खो, यहाँ तक कि इच्छित अभ्यास भली भाँति स्थिर हो जायँ। सर्वदा किसी क्रियाके करने या न करनेपर ध्यान देते रहना चाहिये। जो विद्यार्थी बुरे अभ्यासों—यथा ताश, चौपड़ आदि खेलों—में फँसकर स्कूल नहीं जाते वे शिक्षामें पीछे रह जाते हैं। उनको चाहिये कि इन खराब अभ्यासोंको छोड़ दें और अच्छे अभ्यास बनावें। संकल्प शक्तिको पुष्ट करनेके लिये यह एक अच्छा अभ्यास है कि प्रत्येक दिवस कुछ न कुछ वह कार्य्य करना चाहिये जिसको तुम करना नहीं चाहते। अपने आपको वह बात करनेपर वाधित करो जो तुम करना पसन्द नहीं करते, किन्तु वह करने योग्य हो और बुरी वात न हो। तुम देखोगे कि तुम्हारा स्वभाव ऐसा करनेसे पुष्ट होता जाता है और असर गहरा पड़ता जाता है, यहाँ तक कि आत्मशासन या आत्मनिग्रह सम्भव प्रतीत होने लगता है। तमाम शिक्षाका आदर्श आत्म-निग्रह ही है जो संकल्पको संवर्धित करनेसे प्राप्त हो सकता है।

———

रोचक प्रश्नावली ।

(१) घोड़े, गधे, गाय, भैंस और कुत्तेकी पाशविक क्रियाओंका वर्णन करो ।

(२) कहा जाता है कि एक महावतको हाथीने मार डाला। मृतककी भार्य्याने अपने एक छोटे बालकको हाथीके सम्मुख डाल दिया। हाथीने उस बालकको उठा: कर अपने मस्तकपर बिठा लिया और वह महावत बन गया । क्या हाथीकी यह क्रिया पाशविक थी ? यदि हाँ तो क्यों कर ?

(३) इसका क्या कारण है कि हम आत्माके अनुकूल कार्य्य करनेवालेका विश्वास बहुत शीघ्र कर लेते हैं ?

(४) बालक वर्त्तमान छोटीसी वस्तुको भविष्यमें मिलनेवाली मूल्यवान् वस्तुसे क्यों अधिक पसन्द करता है ? बालक रुपयेकी अपेक्षा पैसा क्यों लेना चाहता है ?

(५) बालककी शिक्षाके लिये, शिक्षक कितनी योग्यताका होना चाहिये ?

(६) कुत्ते, बिल्ली, बालक, अशिक्षित और शिक्षितोंमें प्रतिषेधक-शक्तिके संवर्धनका निरीक्षण करो और बताओ कि आचार पर शिक्षाका कितना प्रभाव पड़ता है ।

(७) मैथो आर्नोल्ड (Mathew Arnold) नामका एक अँगरेज विद्वान् कहता है कि (Conduct is three-fourth of life) आचार जीवनका तीन-चौथाई होता है। क्या यह ठीक है?

(८) अच्छे अभ्यास बनानेमें ग्रामकी अपेक्षा नगर-वास उत्तम है। क्यों ?

(९) इसमें कितनी सत्यता है? Where ignorance is bliss, it is folly to be wise जहाँ अज्ञान सुख हो वहाँ बुद्धिमानी मूर्खता है ।

समाप्त ।

पारिभाषिक शब्दावली।

अचेत—Unconscious.
अनुभव—Experience.
अधिकता—Intensity.
अन्धस्थान—Blind spot.
अनुकूल पश्चात्-दृष्टि—Positive after-image.
अन्तर-स्थित परदा—Retina.
अवधान—Attention.
अल्प-कालत्व— Recency of time.
अन्त—End.
अविश्वास—Unbelief.
अद्भुत—Sublime or wonderful.
अद्भुत क्षोभ—Emotions of sublime.
अहेतुक क्रिया—Random movements.
अभ्यास—Habit.
अनुकरण—Imitation.
आचार—Conduct or morality.
आचार-शास्त्र—Ethics.
आचार-क्षोभ—Moral emotions.
आचार-नियम—Moral law.
आन्तरिक—Internal.
आदर्श—Ideal.
इतिहासिक—Historical.
इच्छा—Desire.
उष्ण—Hot.
उत्तेजक—Stimulant or stimulus.
उत्तेजना—Stimulus.
उपलब्धि—Apperception.
उत्पादक—Creative.
उत्तम स्मृति—Good memory.

उद्देश्य—Subject or purpose.
कल्पना—Imagination.
कार्य्य-कारणका नियम—Law of cause and effect
कामना—Desire.
घ्राण—Smell.
चित्त—Consciousness.
चित्तकी वृत्ति—State of consciousness.
चुनाव—Selection.
छूना—Touch (Proper).
जातीकरण—Generalisation.
तर्क-शास्त्र—Logic.
तर्कना—Reasoning.
तल—Dimension or Surface.
तुलना—Comparison.
दर्शन—Philosophy.
द्वार—Threshold.
दृष्टि-नाड़ी—Optic nerve.
दृष्टि-क्षेत्र—Field of vision.
धारणा—Retention.
नियम—Law.
निरीक्षण—Observation.
निष्क्रिय—Passive.
निश्चेष्ट—Passive.
निर्धारण—Judgment.
निर्णय—Deciison.
परिमाण—Standard.
परीक्षा—Experiment.
पश्चात्-मनन—Retrospection.
प्रयोग-शाला—Laboratory.
प्रमेय—Phenomena.
पीला-स्थान—Yellow-spot.

प्रतिक्रिया--Reaction.
प्रति-कार्य्यका समय—Reaction time.
प्रतिफलन क्रिया—Reflex action.
प्रयत्नशलि अवधान—Voluntary attention.
प्रयोजन--Motive.
पुनर्प्रत्यक्ष--Representation.
प्रत्यक्ष--Perception, percepts or presen-
[tation.
पाचन—Assimilation.
पुनरुत्पादन--Reproduction.
पहिचान--Recognition.
प्रभाव--Impression.
प्रायोगिक स्मृति—Ready memory.
प्रतिज्ञा—Premiss.
परकीय--Altruistic.
परकीय विकार—Altruistic feelings.
प्रमाण--Proof.
प्रबोधन—Intellect.
प्रबोधन क्रिया—Intellectual action.
पाशविक—Instinctive.
प्रतिषेधक--Inhibitory.
बाह्य--External.
भौतिकशास्त्र—Physics.
भेद—Differenciation.
भद्दापन—Ludicrous.
मन—Mind.
मनोविज्ञान--Psychology.
मध्यम पद या शब्द—Midle term.
मनन--Introspection.
मस्तिष्क--Brain.
मानसिक—Mental.

मांसपेशियोंका संवेदन--Muscular sensation.
योजक—Copula.
ललित—Aesthetic.
ललित कला--Fine arts.
ललित क्षोभ--Aesthetic emotions.
विरुद्ध पश्चात् दृष्टि--Negative after-image.
विद्युत्—Electricity.
विरोधका नियम—Law of contrast.
विशेष—Particular.
व्यापार--Function.
विचार--Thought.
विचार-संबन्ध--Thought relation.
विधायक—Constructive.
विधायक कल्पना—Imagination.
विधेय—Predicate.
विश्वास--Belief.
विशेषानुमान--Deductive Logic.
विवेचन--Deliberation.
वैज्ञानिक—Scientific.
वैज्ञानिक प्रयोजन--" purposes.
वास्तविक--Concrete or real.
वास्तविक वस्तु—Real things.
श्रवण—Hearing.
शरीर-विज्ञान-- Physiology.
सचेत--Conscious.
सचेष्ट—Active.
शारीरिक—Physical.
सौंदर्य्यशास्त्र—Aesthetics.
रसायनशास्त्र—Chemistry.
सामान्य—General.
सिद्धान्त--Law, principle or theory.
स्मृति--Memory.

संकल्प--Will.
संकल्पात्मक क्रिया--Voluntary actions.
संवेदन--Sensation.
संस्थान--System.
स्वाद्—Taste.
सुरीला—Musical.
स्वर--Tone.
स्पर्श--Touch.
स्थानीय-करण—Localisation.
सापेक्ष—Relative.
स्वत: अवधान—Involuntary attention.
संबन्ध--Association.
संबन्धका नियम--Law of association.
समीपताका नियम--Law of contiguity.
सादृश्यताका नियम — " similarity.
संस्कार—Impression.
स्पष्टता--Vividness.
स्वत: स्मृति—Spontaneous memory.
संख्या--Number.
साधन--Means.
संवित—Conceptions, Concept, or Idea.
सामान्यानुमान—Inductive logic.
संबंधाधीन तर्क--Associational reasoning.
स्वकीय—Egoistic.
स्वकीय विकार— " feelings.
स्थिति--Environment.
स्वभाव—Character.
क्षोभ—Emotion.
ज्ञान--Knowledge, cognition.
ज्ञानतन्तु—Nerves.
ज्ञानात्मक--Intellectual.